संस्कृति-रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ७३ वां रत्न

सार्थ
प्रतिक्रमण सूत्र

(मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ, प्रश्नोत्तर सहित)

प्रकाशक—

श्री अ. भा. सा. जैन
संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

शुद्धि-पत्र

नोट—कृपया पुस्तक पढ़ने से पहले निम्न अशुद्धियां अवश्य सुधार लें—

मूल पाठ

पृ.	प.	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१	असज्झाए	असज्झाइए
२८	२	सज्झाए	सज्झाइए
२८	२–३	भणता गुणता विचारता	भणतां गुणतां विचारतां
३७	७	सदेह किया हो ४	संदेह किया हो अथवा साधु-साध्वी के मलिन वस्त्र आदि देख कर घृणा की हो ४
४५	११	दुक्वडं	दुक्कड
४५	१२	परदर	परदार
४७	१२	सरदहतलायतोसणया	सरदहतलायसोसणया
५३	९	(६० १५)	(६०+१५)
६६	१८	भोगातिव्त्राभिलासे	भोगति व्वाभिलासे
१०५	७	अह दिशिप्पमा-	अहोदिसिप्पमा-
१४४	११	माणं	मा णं
१५९	३	सिंघाणसु	सिंघाणेसु
१७७	१०-११	पांड-क्कमाम	पडिक्कमामि
१७८	२	रुवमए	रूवमए
१७८	७	कही	नही
१८०	१	याणाए	यणाए

निवेदन

प्रतिदिन प्रात साय प्रतिक्रमण करना साधक के लिए आवश्यक है। आजकल प्राय प्रतिक्रमण रटा जाता है उसका मम समझा या समझाया नही जाता, जिससे आवश्यक साधना भार रूप होती जा रही है। प्रतिक्रमण के छह आवश्यक जीवन मे ओतप्रोत हो जाने चाहिये, इसके लिये मूल पाठो के अर्थ एव भावार्थ को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत सस्करण मे छह आवश्यको का स्वरूप, विधि, मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावाथ और प्रश्नोत्तर दिये गये हैं। आशा है धमप्रेमी श्रावक श्राविकाए मघ के इस नवीन प्रकाशन से यथोचित लाभ उठा कर मनोयोग पूर्वक उभयकाल आवश्यक करते हुए अपनी आत्मा को निर्मल बनाएगें।

इस पुस्तक के सकलन मे श्रावक आवश्यक सूत्र (जोधपुर) श्रमण सूत्र (आगरा) आवश्यक सूत्रम् (मेघनगर) प्रतिक्रमण सूत्र (बीकानेर) सुबोध जैन पाठमाला भाग १–२ एव जैन सिद्धात बोल सग्रह (बीकानेर) आदि पुस्तको की सहायता ली गयी है। मै इन सब पुस्तको के लेखको एव प्रकाशको के प्रति हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूँ।

ज्ञान की अल्पता के कारण इस पुस्तक मे कही भी जिन-वाणी के विपरीत प्ररूपणा हुई हो तो अनत सिद्धो की साक्षी से मिच्छामि दुक्कड।

सैलाना (म प्र) — विनीत—

८ जनवरी १९९१ — पारसमल चण्डालिया

शुद्धि-पत्र

नोट—कृपया पुस्तक पढ़ने से पहले निम्न अशुद्धियां अवश्य सुधार लें—

मूल पाठ

पृ.	प.	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१	अमज्झाए	असज्झाइए
२८	२	सज्झाए	सज्झाइए
२८	२—३	भणता गुणता विचारता	भणतां गुणतां विचारतां
३७	७	सदेह किया हो ४	संदेह किया हो अथवा साधु-साध्वी के मलिन वस्त्र आदि देख कर घृणा की हो ४
४५	११	दुक्वडं	दुक्कड
४५	१२	परदर	परदार
४७	१२	सरदहतलायतोसणया	सरदहतलायसोसणया
५३	९	(६० १५)	(६०+१५)
६६	१८	भोगातिव्राभिलासे	भोगतिव्वाभिलासे
१०५	७	अह दिशिप्पमा-	अहोदिसिप्पमा-
१४४	११	माणं	मा णं
१५९	३	सिंघाणसु	सिंघाणेसु
१७७	१०-११	पांड-क्कमाम	पडिक्कमामि
१७८	२	रुवमए	रूवमए
१७८	७	कही	नही
१८०	१	याणाए	यणाए

पृ	प	अशुद्ध	शुद्ध
१८०	७	सज्जाइय	सज्झाइय
२१५	१७	वन सम्पदा	वचन सम्पदा
२४८	१६	उक्खित्तविरेगण	उक्खित्तविवेगण

शब्दार्थ, भावार्थ

पृ	प	अशुद्ध	शुद्ध
६	१७	चना	वचना
६	२१	शुभ योगो	अशुभ योगो
२४	२	उत्सूत्र सूत्र	उत्सूत्र-सूत्र
२४	३	माग के	माग से
२४	८	असावगपावग्गो	असावगपाउग्गो
२८	२०	असज्झाए	असज्झाइए
२६	९	स्वाध्यायान	स्वाध्याय न
५१	१७	ध्यान सयम	धमध्यान सयम
९७	१	अवसेस	अवसेस
१०१	७	साम्रग्री	सामग्री
१०२	१	धातुओ के	धातुओ के एव घर बिखरी के अन्य सामान के
१०६	६	पकवान	पक्वान्न
१११	६	पडिवद्ध	पडिबद्ध
१३२	६	खाद्य	खादिम
१३२	६	स्वाद्य	स्वादिम
१३९	६-७	खाद्य-स्वाद्य	खादिम-स्वादिम

पृ.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
१४५	५	(मृत्यु)	मृत्यु
१४५	७	पालन करना	आराधना करना
"	१०	सिरसावत्तं	सिरसावत्तं
"	१२	समणुजाणमि	समणुजाणामि
"	१३	समझूगा	जानता हूँ
"	१५	छिज्जं	धिज्जं
"	२०	उण्ह	उण्हं
१४७	८	भख	भूख
१४७	१२	ममत्व	ममत्व
१५६	११	सोणिएसु	सिंघाणेसु
१६२	१०	अनक	अनेक
१६८	६	दगसंसट्ठ	दगसंसट्ठं
१७२	अंतिम	भडोवगरणस्स	भंडोवगरणस्स
१८१	२२	सतहि	सत्तहिं
१८२	८	अवभे	अवंभे
१८४	११	स्थाना	स्थानों
१८४	१२	वधं	विध
१९८	६	तित्थगाणं	तित्थगराणं
२००	५	माक्ष	मोक्ष
२००	१६	जिनधम	जिनधर्म
२०१	१५	परिह र करन	परिहार करने
२४७	६	अलेवाडे	अलेवाडेण

प्रश्नोत्तर

पृ	प	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१५-१६	स्युल	स्यूल
३१	१०	उवज्झारियाण	उवज्झारियाण
३५	३	अस्वाध्याय स्वाध्याय	अस्वाध्याय मे स्वाध्याय
३५	६	असज्झाए सज्झाओ	असज्झाइए सज्झाइय
३५	७ व ८	सज्झाए न सज्झाओ	सज्झाइए न सज्झाइय
४१	५	नह	नही
४३	१	निहनव	निह्नव
४३	अतिम	प्रश्न	उत्तर
६२	१०	ह ता	होता
७१	१८	पूर्वोचार्यों	पूर्वाचार्यों
८२	५	(ना ा)	(नाश)
८३	२२	क्योकि अन्य आरभ करते	हिंसा के दो भेद हैं—१ सकल्पजा २ आरभजा। जान-बूझ कर मारने के विचार से मारना सकल्पजा हिंसा है, श्रावक इसका त्याग करता है किंतु आरभजा का त्याग नही कर सकता है, क्योकि काम करते
८४	१४	रक्षा आदि	रक्षा पालन पोषण आदि

पृ.	पं	अशुद्ध	शुद्ध
९८	६	आ म-साधना	आत्म-साधना
१०४	३	विक	विक
१०६	१७,१८,१९	किमी.	किलोमीटर
११२	११	संम्वद्ध	सम्वद्ध
११६	१९	धर्म-पुण्य में व्यय करता है	दान पुण्य आदि में व्यय कर सकता है
१३४	अंतिम	ने	श्रावक ने
१३५	१	आदि ने खाते पीते आठ	आदि श्रावको ने चारों प्रकार का आहार खाते पीते हुए आठ
१३५	२	'दया'	'दयाव्रत'
"	७	अधिक का	अधिक प्रहर का
"	१५	सकेगी। पौषध विशेष काल	सकती है। पौषध विशेष लम्बे काल
१३६	१७ व १९	अतिचार	दोप
१३९	२०	३खाद्य४स्वाद्य	३ खादिम ४ स्वादिम
१४०	८	"	"
१९४	१६	शास्त्र कीड़े	शास्त्र के कीड़े
२६२	१३	नौषध	पौषध

सूचना—शुद्धि पत्र के अलावा कहीं कहीं मात्राएं ा, ि, ै, ं, ृ, ॅ, ` , ो आदि साफ नहीं उठी हैं अतः पूर्वापर संबंध के अनुसार अपनी पुस्तक शुद्ध करने का कष्ट करें।

सार्थ प्रतिक्रमण सूत्र

आवश्यक का स्वरूप

आगम बत्तीसी मे आवश्यक सूत्र का समावेश है। आवश्यक का अर्थ है—'जो अवश्य किया जाय'। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध सघ के लिये उभयकाल आवश्यक करने का विधान है। सम्यग्ज्ञान आदि गुणो का पूर्ण विकास करने के लिये, जो क्रिया अर्थात् साधना अवश्य करने योग्य है, वही 'आवश्यक' है। आवश्यक के छह भेद इस प्रकार हैं—

(१) सामायिक—राग द्वेष के वश न होकर समभाव (मध्यस्थ भाव) मे रहना अर्थात् किसी प्राणी को दु ख नही पहुँचाते हुए सभी के साथ आत्म तुल्य व्यवहार करना एव आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणो की वृद्धि करना सामायिक है।

(२) चतुर्विंशतिस्तव—२४ तीर्थंकरो के गुणो का भक्ति-पूर्वक कीर्तन करना चतुर्विंशतिस्तव है। इसका उद्देश्य गुणा-

नुराग की वृद्धि है जो कि निर्जरा और आत्मा के विकास का साधन है।

(३) **वंदना**—मन, वचन और शरीर का वह प्रशस्त व्यापार जिसके द्वारा पूज्यों के प्रति भक्ति बहुमान प्रकट किया जाय, वंदना कहलाता है।

(४) **प्रतिक्रमण**—प्रमादवश शुभ योग से गिरकर अशुभ योग प्राप्त करने के बाद पुनः शुभ योग प्राप्त करना अथवा अशुभ योग से निवृत्त होकर उत्तरोत्तर शुभ योग में प्रवृत्त होना 'प्रतिक्रमण' है।

(५) **कायोत्सर्ग**—धर्मध्यान और शुक्लध्यान के लिए एकाग्र होकर शरीर के ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

(६) **प्रत्याख्यान**—द्रव्य और भाव से आत्मा के लिए अनिष्टकारी अतएव त्यागने योग्य अन्न, वस्त्रादि तथा अज्ञान, कषायादि का मन, वचन और काया से यथाशक्ति त्याग करना प्रत्याख्यान है।

प्रश्न—आवश्यक के इन छह भेदों का क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया है?

उत्तर—आलोचना प्रारंभ करने से पहले आत्मा में सम-भाव की प्राप्ति होना आवश्यक है अतः पहला आवश्यक सामायिक चारित्र रूप है। आलोचना निर्विघ्नता से पूर्ण हो इसके लिए महापुरुषों की स्तुति की जाती हैं। अरिहंत के गुणों की स्तुति रूप दूसरा चतुर्विंशतिस्तव नामक आवश्यक

दशन और ज्ञान रूप है। ज्ञान, दशन और चारित्र इन तीनो के सेवन म भूल होने पर उनकी गुरु के समक्ष वदना पूवक विनय भाव से आलोचना कर लेनी चाहिये अत तीसरा आवश्यक वदना है। गुर के आगे भूल की आलोचना करने पर वापिस शुभ योगो मे आने के लिए प्रयत्न करना चाहिये इसलिये वदना के वाद प्रतिक्रमण कहा गया है। प्रतिक्रमण के द्वारा ज्ञान, दर्शन चारित्र मे लगे अतिचारो की शुद्धि की जाती है। इतने पर भी दोषो की पूण शुद्धि नही हो तो कायोत्सर्ग का आश्रय लेना चाहिये, जो कि प्रायश्चित्त का एक प्रकार है। कायोत्सग करने के वाद भी दोषो की पूण रूप से शुद्धि न हो तो उसके लिये प्रत्याख्यान करना चाहिये। इस प्रकार आवश्यक के छहो भेद परस्पर सवद्ध एव काय कारण भाव से व्यवस्थित है। आत्म शुद्धि के लिये ही इन छह आवश्यको का क्रम इस प्रकार रखा गया है।

प्रतिक्रमण आवश्यक, आवश्यक का एक अग विशेष है तथापि सामान्यत सम्पूण आवश्यक को प्रतिक्रमण कहा जाने लगा है। सामायिक आदि आवश्यको की शुद्धि प्रतिक्रमण के विना नही होती है अत प्रतिक्रमण मुख्य होने से वही आवश्यक रूप मे प्रचलित हो गया है। दूसरा एक कारण यह भी है कि आवश्यक के छह भेदो मे प्रतिक्रमण नामक चौथा आवश्यक अक्षर प्रमाण मे सबमे वडा है। इससे भी आवश्यक का दूसरा नाम प्रतिक्रमण सिद्ध होता है।

प्रतिक्रमण का अर्थ

प्रतिक्रमण मे 'प्रति' उपसर्ग है इसका अर्थ विपरीत अथवा प्रतिकूल होता है 'क्रम' धातु से 'क्रमण' बना है जिसका अर्थ है—गमन करना। भावार्थ यह है कि शुभ योगो से अशुभ योगों मे गये हुए आत्मा का पुनः शुभ योगो मे आना 'प्रतिक्रमण' कहलाता है ।

प्रति उपसर्ग का 'विपरीत' अर्थ करके निम्न व्याख्या की जाती है—"प्रमाद के कारण स्वस्थान से परस्थान मे (स्वभाव से विभाव में) गयी हुई आत्मा का पुनः स्वस्थान में (स्वभाव में) आना प्रतिक्रमण कहलाता है । जो आत्मा अपने ज्ञान दर्शनादि रूप स्थान से प्रमाद के कारण मिथ्यात्व आदि दूसरे स्थानो में चला गया है उसका मुड़कर फिर अपने स्थान में आना प्रतिक्रमण है ।

प्रति उपसर्ग का दूसरा अर्थ–प्रतिकूल होता है, उसके अनुसार क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भाव के वश में बने हुए आत्मा का पुनः औदयिक भाव से क्षायोपशमिक भाव में लौट आना, प्रतिकूल गमन के कारण यह प्रतिक्रमण कहलाता है । राग द्वेषादि औदयिक भाव संसार का मार्ग है और समता, क्षमा, दया, नम्रता आदि क्षायोपशमिक भाव, मोक्ष का मार्ग है ।

प्रतिक्रमण की जो परिभाषाएँ प्रचलित हैं, वे इस प्रकार है—

(१) कृत पापों की आलोचना करना—निंदा करना, प्रतिक्रमण है ।

(२) व्रत प्रत्याख्यान आदि मे लगे दोषो से निवृत्त होना।

(३) अशुभ योग से निवृत्त होकर निःशल्य भाव मे शुभयोग मे उत्तरोत्तर प्रवृत्त होना, प्रतिक्रमण है।

(४) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग मे आत्मा को हटाकर फिर से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र मे लगाना प्रतिक्रमण कहलाता है।

(५) पाप क्षेत्र से वापस आत्म शुद्धि क्षेत्र मे लौट आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रतिक्रमण के भेद

सामान्य रूप से प्रतिक्रमण दो प्रकार का है--१ द्रव्य प्रतिक्रमण और २ भाव प्रतिक्रमण।

१ द्रव्य प्रतिक्रमण—द्रव्य प्रतिक्रमण का अर्थ है—अतरग उपयोग रहित, केवल परपरा के आधार पर, पुण्य फल की इच्छा रूप प्रतिक्रमण करना अर्थात् अपने दोषो की पाठा मे शब्द रूप आलोचना कर लेना और दोष शुद्धि का कुछ भी विचार नही करना, द्रव्य प्रतिक्रमण है। लब्धि आदि के निमित्त से किया जाने वाला प्रतिक्रमण भी द्रव्य प्रतिक्रमण ही है।

२ भाव प्रतिक्रमण--भाव प्रतिक्रमण का अर्थ है—अतरग उपयोग के साथ, लोक परलोक की चाह रहित, यशकीर्ति सम्मान आदि की अभिलाषा नही रखते हुए एव मात्र अपनी आत्मा को कममल से विशुद्ध बनाने के लिये जिनाज्ञा अनुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण, भाव प्रतिक्रमण होता है।

प्रमादवश जो अतिचार–दोष या पाप लगा है उस पाप को अकरणीय समझ कर दुबारा जानते हुए कभी नही करने का निश्चय करना या उन दोषों का दुबारा सेवन नही करना और सदा सावधान रहना, भाव प्रतिक्रमण है।

दोषों का एक वार प्रतिक्रमण करके उसका वार-बार सेवन करते रहना और उनकी शुद्धि के लिये वार-वार प्रतिक्रमण करते रहना यथार्थ प्रतिक्रमण नही है। ऐसा करना कुम्हार के वर्तनों को कंकर द्वारा वार वार फोड़कर माफी मांगने 'मिच्छामि दुक्कडं' देने के समान है। भाव प्रतिक्रमण के विना द्रव्य प्रतिक्रमण से वास्तविक लाभ प्राप्त नही होता। भाव प्रतिक्रमण से ही कर्म निर्जरा रूप वास्तविक फल की प्राप्ति होती है। अतः द्रव्य प्रतिक्रमण से भाव प्रतिक्रमण की ओर अग्रसर होना चाहियें।

काल के भेद से प्रतिक्रमण तीन प्रकार का कहा गया है–

(१) भूतकाल मे लगे हुए दोषो की आलोचना करना।

(२) वर्तमान काल में लगने वाले दोषों से संवर द्वारा ८चना।

(३) प्रत्याख्यान द्वारा भावी दोषो को अवरुद्ध करना।

प्रश्न—प्रतिक्रमण तो भूतकालिक माना जाता है, फिर उसे त्रिकाल विषयक कैसे कहा है?

उत्तर—प्रतिक्रमण का अर्थ है—शुभ योगो से निवृत्त होना।

आलोचना निंदा द्वारा भूतकाल संवंधी अशुभ योग से निवृत्ति होती हैं अतः यह भूतकाल प्रतिक्रमण है। संवर के

द्वारा वर्तमान काल में अशुभ योगों से निवृत्ति होती है अत यह वर्तमान काल का प्रतिक्रमण है और प्रत्याख्यान द्वारा भावी अशुभ योगों की निवृत्ति होती है, अत यह भविष्यकालीन प्रतिक्रमण कहा जाता है। इस तरह प्रतिक्रमण द्वारा तीनों कालों में अशुभ योगों से निवृत्ति होती है। अत प्रतिक्रमण त्रिकाल के लिये होता है, ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं है।

विशेष काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण के निम्न पांच भेद भी किये गये है—

(१) दैवसिक— प्रतिदिन सायंकाल—सूर्यास्त के समय दिन भर के पापों की आलोचना करना।

(२) रात्रिक—रात्रि के अंत में—प्रातःकाल के समय रात्रि के पापों की आलोचना करना।

(३) पाक्षिक—महीने में दो बार—पाक्षिक पर्व के दिन—१५ दिन में लगे हुए पापों की आलोचना करना।

(४) चातुर्मासिक—कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढ़ी पूर्णिमा को चार महिने में लगे हुए पापों की आलोचना करना।

(५) सांवत्सरिक—प्रत्येक वर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमी—संवत्सरी के दिन वर्ष भर के पापों की आलोचना करना।

प्रश्न—प्रतिदिन उभयकाल प्रतिक्रमण करने से दैवसिक और रात्रिक अतिचारों की शुद्धि प्रतिदिन हो जाती है फिर ये पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण क्यों किए जाते हैं?

उत्तर--हम प्रतिदिन अपने घरों में झाड़ू लगाते हैं और कूड़ा साफ करते हैं चाहे कितनी ही सावधानी से झाड़ू दी जाय फिर भी थोडी बहुत धूल रह ही जाती है जो विशिष्ट पर्व—त्योहार आदि के प्रसंग पर दूर--साफ कर ली जाती है। इसी प्रकार प्रतिदिन उभयकाल प्रतिक्रमण करते हुए भी कुछ भूलों का प्रमार्जन करना बाकी रह ही जाता है, जिसके लिए पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है। पाक्षिक प्रतिक्रमण के बाद भी जो भूले रह जाय उसके लिए चातुर्मासिक प्रतिक्रमण का विधान है। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण से भी बची रही हुई अशुद्धि का सांवत्सरिक प्रतिक्रमण से प्रमार्जन किया जाता है ।

निम्न पाच प्रकार का प्रतिक्रमण भी प्रकारांतर से कहा गया है।

(१) **आश्रव द्वार प्रतिक्रमण**—आश्रव के द्वारों से निवृत्त होना पुनः इनका सेवन नहीं करना आश्रव द्वार प्रतिक्रमण + है।

(२) **मिथ्यात्व प्रतिक्रमण**—उपयोग अनुपयोग या सहसा-कारवश आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम में प्राप्त होने पर उससे निवृत्त होना अर्थात् ज्ञात या अज्ञात रूप में यदि कभी मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया हो, मिथ्यात्व में परिणति की हो तो उसकी आलोचना कर पुनः शुद्ध सम्यक्त्व भाव में उपस्थित होना।

(३) **कषाय प्रतिक्रमण**—क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय परिणाम से आत्मा को निवृत्त करना।

४) **योग प्रतिक्रमण**—मन, वचन, काया के अशुभ

+ अविरति और प्रमाद का आश्रव द्वार मे समावेश हो जाता है।

व्यापार प्राप्त होने पर उनसे आत्मा को पृथक् करना योग प्रतिक्रमण है।

(५) भाव प्रतिक्रमण--आश्रव द्वार, मिथ्यात्व, कषाय और योग प्रतिक्रमण मे तीन करण तीन योग से प्रवृत्ति करना अर्थात् मन, वचन और काया से मिथ्यात्व, कषाय आदि दुभ वा मे न स्वय गमन करना, न दूसरो से गमन कराना और न ही गमन करने वालो का अनुमोदन करना, भाव प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण ध्रुव व अध्रुव के भेद से दो प्रकार का है--भरत एरवत क्षेत्र मे पहले और अतिम तीर्थंकर के शासन काल मे अपराध हुआ हो या नही भी हुआ है फिर भी उभयकाल अवश्यमेव प्रतिक्रमण करने का विधान होने से 'ध्रुव' कहलाता है अर्थात् प्रथम और अतिम तीर्थंकरो के लिये यह स्थित कल्प है।

महाविदेह क्षेत्र मे और इन्ही भरत और ऐरवत क्षेत्र मे मध्य के २२ तीर्थंकरो के शासनकाल मे कारण उपस्थित हो तब ही प्रतिक्रमण करने का विधान होने से 'अध्रुव' कहलाता है।

प्रतिक्रमण आवश्यक क्यों है?

प्रमादवश या अनजान पने मे ग्रहण किए हुए व्रतो मे अतिचार दोष लगने की सभावना रहती है। जब तक दोषो को दूर नही किया जाता तब तक आत्मा शुद्ध नही बनती। प्रतिक्रमण के द्वारा दोषो की आलोचना की जाती है, आत्मा को अशुभ भावो से हटाकर शुभ भावो की तरफ ले जाया जाता है। प्रतिक्रमण

के माध्यम से ही साधक अपनी भटकी हुई आत्मा को स्थिर करता है। भूलों को ध्यान में लाता है और मन, वचन, काया से पश्चाताप की अग्नि में आत्मा को निखारता है। आत्म-शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण आवश्यक है।

जैसे मार्ग में चलते हुए अनाभोग प्रमाद आदि से पैर में कांटा लग जाता हैं तो उसे निकालना आवश्यक होता है। जब तक कांटा नही निकाला जाता है तब तक ठीक ढंग से चला नही जा सकता है। कभी-कभी कांटा नही निकलने पर पैरों में विप फैल जाता है और चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है वैसे ही सम्यग्ज्ञानादि ग्रहण करने के पश्चात् प्रमाद, अविवेक आदि से अतिचार रूपी कांटे लग जाते हैं। जब तक उन अतिचारों को दूर नहीं किया जाता है, पापों का पश्चाताप रूप प्रतिक्रमण नही किया जाता है, तब तक जीव मोक्ष के निकट नही हो पाता है। अतिचारों की शुद्धि नही होने पर जीव विराधक बन जाता है, यहां तक की सम्यक्त्व आदि से भी भ्रष्ट हो जाता है, अत: प्रतिक्रमण आवश्यक है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य ये पांच आचार कहलाते हैं। पंचाचार की शुद्धि के लिये भी प्रतिक्रमण आवश्यक है।

कर्म बन्धन से छूटकारा पाने के लिये यह आवश्यक है कि जीव पूर्वकृत कर्मो का क्षय करे और नवीन कर्मों का बन्ध नहीं करे। प्रतिक्रमण द्वारा पूर्वकृत पापों की निंदा की जाती है, आलोचना की जाती है और मन वचन काया से प्रायश्चित्त

(पश्चाताप) किया जाता है अत कर्मों की निर्जरा होती है और भविष्य मे कम बधन रुकता है। प्रतिक्रमण मे—"छूटू पिछला पाप से नवा न बाधू कोय" यह उक्ति सिद्ध होती है। अत प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रश्न--जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं उसके लिये क्या प्रतिक्रमण करना आवश्यक है?

उत्तर--प्रतिक्रमण मे छह आवश्यक हैं—साम [illegible],चतुर्विशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। इनमे से केवल चौथा आवश्यक व्रतो के अतिचारो की आलोचना का है, शेष का सबध इनसे नहीं है। कई पाठ सामान्य आलोचना के हैं, कई स्तुति के हैं और कई वन्दना के। कायोत्सर्ग एव प्रत्याख्यान सबधी प्रतिक्रमण का अश भी भूत एवं भविष्य को आत्मशुद्धि से सबध रखता है। इस प्रकार व्रतधारी और बिना व्रत वाले सभी के लिये सामान्य रूप से प्रतिक्रमण की आवश्यकता ही है। जिसने व्रत नही लिया है उसका भी झुकाव व्रतो की ओर हो। यही सम्यक्त्वधारी से आशा की जाती है। चारित्र मोहनीय का विशिष्ट क्षयोपशम नही होने से व्रत न लेने मे वह अपनी कमजोरी समझता है और उस शुभ दिन की प्रतिक्षा करता है जब कि वह व्रत धारण कर सकेगा। ऐसे सम्यक्त्वधारी के लिये व्रत एव अतिचारो का गिनना व्यर्थ कैसे हो सकता है? उसे अपनी शक्ति का ध्यान आता है। व्रतधारियों के लिए सम्मान भाव आता है एव व्रतधारण की रुचि होती है। कई अतिचारो के पाठ सामान्य है। कई मे समकित

एवं ज्ञान के अतिचारों का वर्णन है जिनकी आलोचना व्रत रहित सम्यक्त्व धारियो के लिए भी आवश्यक है। आवश्यक बत्तीसवां आगम है उसकी स्वाध्याय आत्म कल्याण के लिये है। प्रतिक्रमण व्रतों की आलोचना के सिवाय निम्न चार कारणों से भी किया जाता है---(१) जिन कार्यों को करने की मना है, उन्हे किया हो। (२) करने योग्य कार्य नही किया हो। (३) वीतरागी के वचनों पर श्रद्धा नही रखी हो। (४) सिद्धांत विपरीत प्ररूपणा की हो, इसके लिए प्रतिक्रमण करना चाहिये।

प्रतिक्रमण एक ऐसी औषधि के समान है जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग शात हो जाते है, रोग नही होने पर उस औषधि के प्रभाव से वर्ण, रूप, यौवन और लावण्य आदि में वृद्धि होती है और भविष्य में रोग नही होते। इसी तरह यदि दोष लगे हो तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती है और दोष नही लगा हो तो प्रतिक्रमण चारित्र की विशेष शुद्धि करता है। इसलिये प्रतिक्रमण सभी के लिये समान रूप से आवश्यक है।

प्रतिक्रमण से लाभ

नित्य उभयकाल प्रतिक्रमण करने से अनेक लाभ है। प्रतिक्रमण मोक्ष-प्राप्त करने का उपाय है। प्रतिक्रमण के द्वारा जीव, आत्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होता है। पूर्व में किये हुए पापों की निंदा करना और भविष्य मे उनको फिर से सेवन नही करने के लिये सावधान रहना ही प्रतिक्रमण का वास्तविक

उद्देश्य है, ऐसा करने से आत्मा धीरे-धीरे सकल कर्मों से मुक्त होकर शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाती है। भाव पूर्वक उभयकाल प्रतिक्रमण करने से निम्न लाभ हैं—

१ सामायिकादि आवश्यकों का ज्ञान (स्मरण) रहता है।

२ "वे अवश्य करणीय हैं" —यह श्रद्धा रहती है।

३ यदि व्रत ग्रहण किये हो तो ग्रहित व्रतो की स्मृति बनी रहती है जिससे व्रतो का सम्यक् पालन होता रहता है।

४ यदि व्रत ग्रहण नही किये हो तो व्रत ग्रहण की भावना होती है।

५ दिन-रात्रि मे कभी भी देव, गुरु का स्मरण आदि न हुआ हो तो कम से कम एक दिन रात्रि मे दो बार स्मरण आदि हो जाता है।

६ सम्यक्त्वादि मे लगे अतिचारो की शुद्धि होती रहती है।

७ यदि व्रत ग्रहण न भी किया हो तो भी पाप के प्रति पश्चाताप होता है।

८ आवश्यक सूत्र होने से स्वाध्याय होता है।

९ लौकिक जीवन की शुद्धि होती है। इस प्रकार नित्य आवश्यक करने से कई लाभ हैं। हम नित्य आवश्यक करें तो—

१ दूसरों को भी आवश्यक का महत्त्व ध्यान मे आता है।

२ वे भी आवश्यक का ज्ञान करते हैं।

३ उन्हे भी आवश्यक पर श्रद्धा होती है।

४ वे भी देवस्तव व गुरुवंदना करते हैं।

५. वे भी पाप का पश्चाताप करते है और कदाचित् व्रत धारण भी करते हैं।

आवश्यक के छह भेदों का पृथक्-पृथक् विशिष्ट फल होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के अ.२९ में इसका वर्णन है। पंचाचार की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है। वह इस प्रकार होती है–

(१) सामायिक आवश्यक से चारित्राचार की विशुद्धि होती है।

(२) चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक से दर्शनाचार की विशुद्धि होती है।

(३) वंदना आवश्यक से ज्ञानादि आचारों की विशुद्धि होती है।

(४) प्रतिक्रमण आवश्यक से आचारो मे लगे हुए अतिचारों को टालने से उन आचारों की शुद्धि होती है।

(५) काउस्सग्ग आवश्यक से प्रतिक्रमण से दूर नही हुए अतिचारों की विशुद्धि होती है।

(६) प्रत्याख्यान आवश्यक से तपाचार की विशुद्धि होती है।

(७) छहों आवश्यक से वीर्याचार की विशुद्धि होती है

पंचाचार की विशुद्धि होने से आत्मा कर्म मल से रहित बनती है और जीव अंत में मोक्ष के अक्षय अव्याबाध सुखों को प्राप्त करता है।

प्रथम आवश्यक–सामायिक

छह आवश्यक मे सामायिक आवश्यक को प्रथम स्थान दिया गया है। समभाव की प्राप्ति होना अर्थात् राग द्वेष रहित माध्यस्थ भाव-'सामायिक' है। ममत्व भाव के कारण आत्मा अनादिकाल से चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण कर रही है ऐसी आत्मा को समभाव मे रमण कराने के लिये सावद्य योगो से निवृत्ति आवश्यक है। जो कि सामायिक से सभव है। आत्मोत्थान के लिये सामायिक—जघन्य प्रयोग है, मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है। समस्त धार्मिक क्रियाओ के लिए आधारभूत होने से ही सामायिक को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है।

सामायिक अर्थात् आत्म स्वरूप मे रमण करना, सम्यक्ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप मे तल्लीन होना। सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप ही मोक्ष मार्ग है। मोक्ष मार्ग मे सामायिक मुख्य है यह बताने के लिए ही सामायिक आवश्यक को सबसे प्रथम रखा गया है।

भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक ९ मे फरमाया है कि—

"आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे"—
अपने शुद्ध स्वरूप मे रहा हुआ आत्मा ही सामायिक है। शुद्ध,

वुद्ध, मुक्त चिदानंद स्वरूप आत्मतत्व की प्राप्ति करना ही सामायिक का प्रयोजन है। मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप कैसा है ? आदि विचारने में तल्लीन होना, आत्म गवेषणा करना सामायिक है।

अनुयोगद्वार सूत्र मे सच्चा सामायिक व्रत क्या हैं ? इसकी परिभाषा वताते हुए कहा है—

"जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥"

अर्थात्—जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में तल्लीन है उसी का सामायिक व्रत है, ऐसा केवल ज्ञानियो ने फरमाया है।

"जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥"

अर्थात्–जो त्रस और स्थावर सभी जीवो को अपनी आत्मा के समान मानता है, सभी प्राणियो पर समभाव रखता है, उसी का सच्चा सामायिक व्रत है, ऐसा केवलज्ञानियो ने फरमाया है।

सामायिक के आध्यात्मिक फल के लिये गौतमस्वामी प्रभु महावीर स्वामी से पूछते है कि—

"सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?"

हे भगवन् ! सामायिक करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

भगवान् ने फरमाया—

"सामाइएण सावज्जजोगविरइ जणयइ।"— सामायिक करने से सावद्य योग मे निवृत्ति होती है। (उत्तराध्ययन सूत्र अ २९) अर्थात् पाप कर्मो मे सम्पूर्ण निवृत्ति होने पर आत्मा पूर्ण विशुद्ध और निर्मल बन जाती है यानी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेती है।

सामायिक की साधना उत्कृष्ट है। सामायिक के बिना आत्मा का पूर्ण विकास असभव है। सभी धार्मिक साधनाओ के मूल मे सामायिक रहा हुआ है। जैन सस्कृति समता प्रधान है। समता भाव की दृष्टि मे ही सामायिक आवश्यक को प्रथम स्थान प्राप्त है।

प्रथम आवश्यक की विधि— निरवद्य स्थान देखकर विधिपूर्वक सामायिक करे। फिर शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को एव वतमान मे अपने गुरु महाराज को **तिक्खुत्तो** के पाठ से तीन बार वदना कर क्षेत्र विशुद्धि (चउवीसत्थव) की आज्ञा ले। चउवीसत्थव मे **नवकार मत्र, इच्छाकारेण, तस्सउत्तरी** का पाठ बोल कर **दो लोगस्स** का काउस्सग्ग करे। **नमो अरिहताण** कह कर काउस्सग्ग पारे। **काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ** बोलकर एक **लोगस्स** प्रकट बोले। फिर नीचे बैठ कर बाया घुटना खडा रख कर **नमोत्थुण** का पाठ दो बार बोले। तत्पश्चात् तीन बार वदना कर प्रतिक्रमण करने की आज्ञा ले। **इच्छामि ण भते और नवकार मत्र** कह कर तीन बार वदना करके प्रथम आवश्यक की आज्ञा ले।

प्रथम आवश्यक में **करेमिभंते**, **इच्छामिठामि**, **तस्सउत्तरी** का पाठ वोल कर काउस्सग्ग करे। काउसग्ग मे ९९ अतिचार की पाटिया (**आगमेतिविहे, दंसण समकित, बारह स्थूल, छोटी संलेखना,**) अठारह पाप, इच्छामि ठामि मन में चितवे। काउस्सग्ग मे '**तस्स मिच्छामि दुक्कडं**' के स्थान पर '**तस्स आलोउं**' कहे। नमो अरिहंताणं कह कर काउस्सग्ग पारे। काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ वोल कर पहला आवश्यक समाप्त करे।

इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते के पाठ से गुरुदेव से दिवस संबंधी प्रतिक्रमण करने की आज्ञा मांगी जाती है और दिवस संबंधी ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप में लगे अतिचारो का चितन करने के लिये—भूलों को समझने के लिए काउस्सग्ग की इच्छा की जाती है।

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं × पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय णाण-दंसण-चरित्ताचरित्त तव अइयार चितणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

× "**देवसियं**" के स्थान पर प्रातःकाल के प्रतिक्रमण में "**राइयं,**" पाक्षिक प्रतिक्रमण मे "**पक्खियं**" चौमासी प्रतिक्रमण में "**चाउम्मासियं**" संवत्सरी प्रतिक्रमण मे "**संवच्छरियं**" वोलना चाहिये।

शब्दार्थ--इच्छामि--इच्छा करता हूँ ण--अव्यय है, वाक्य अलकार मे आता है, भते--हे पूज्य ! हे भगवन् ! तुब्भेहिं--आपकी, अब्भणुण्णाए समाणे--आज्ञा मिलने पर, देवसिय--दिवस सबधी, पडिक्कमण--प्रतिक्रमण को, ठाएमि--करता हूँ देवसिय--दिवस संबधी, णाण--ज्ञान, दसण--दर्शन, चरिताचरित्त--चारित्राचारित्र--देशचारित्र, तव--तप, अइयार--अतिचार, चितणत्थ--चिंतन करने के लिये, करेमि--करता हूँ, काउस्सग्ग--कायोत्सर्ग को ।

भावार्थ--हे पूज्य ! मैं आपके द्वारा आज्ञा मिलने पर दिवस सबधी प्रतिक्रमण करता हूँ । दिवस सबधी ज्ञान, दर्शन, चारित्र (देश) और तप के अतिचार का चिंतन करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न--क्षेत्र विशुद्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर--किसी भी कार्य को प्रारभ करने मे पहले उसके लिए भूमिका की शुद्धि करना । जैसे धोबी वस्त्र धोने से पहले शिला (पत्थर) की शुद्धि करता है वैसे ही प्रतिक्रमण करने से पहले चउवीसत्थव करके क्षेत्र विशुद्धि की जाती है ।

प्रश्न--आज्ञा क्यों ली जाती है ?

उत्तर--प्रतिक्रमण करने के पूर्व आज्ञा लेने का विधान है । इसका कारण यह है कि आज्ञा लेने से दृढता बढती है । जैसे बडे आदमी के सामने हम सावधानी रखते हैं, कोई भूल

नही होने देते है और कदाचित् कोई भूल हो जाती है तो उसके लिये क्षमा माग ली जाती है उसी प्रकार गुरु महाराज की आज्ञा लेकर आवश्यक करने से सावधानी और रुचि के साथ आवश्यक करने की प्रेरणा मिलती है।

प्रश्न—क्या प्रतिक्रमण करने के लिये सीमंधर स्वामीजी की आज्ञा ली जा सकती है?

उत्तर—'इच्छामि णं भंते!' के पाठ में भंते शब्द के अनेक अर्थ हैं। इस अर्थ मे शासनपति, वर्तमान अरिहंत, गुरु आदि का समावेश हो सकता है। अतः वर्तमान अरिहंत सीमंधर स्वामी की आज्ञा लेने को गलत कहना या निषेध करना उचित नही है।

प्रतिक्रमण की आज्ञा जिनका शासन हो, उनकी लेनी चाहिये। यदि कोई सीमंधर स्वामी की आज्ञा लेवे तो आपत्ति की बात नही है। एक अरिहंत की आज्ञा का आराधक सभी अरिहंतो की आज्ञा का आराधक होता है। अतः सीमन्धर स्वामीजी की आज्ञा भी ले सकते है।

प्रश्न—गुरु महाराज की अनुपस्थिति मे पूर्व या उत्तर दिशा मे ही वंदन क्यों किया जाता है?

उत्तर—पूर्व तथा उत्तर दिशा को श्रेष्ठ माना गया है। शास्त्र, स्वाध्याय, दीक्षा, दान आदि धार्मिक क्रियाएँ पूर्व और उत्तर दिशा मे ही करने का विधान है। स्थानांग सूत्र में भगवान् महावीर ने इन्ही दो दिशाओं का महत्त्व वर्णन किया

है। शास्त्र परपरा ही सबसे बडा प्रमाण है। वैसे भी पूव—प्राची दिशा आगे बढने, उन्नति करने, अभ्युदय को प्राप्त करने और तेजस्विता बढाने का उपदेश देती है। उत्तर दिशा ऊँची गति, ऊँचा जीवन, ऊँचा आदर्श पाने का सकेत करती है।

प्रश्न—निथा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन्हे प्रतिक्रमण कठस्थ नही है, जो उसके भाव व विधि आदि को नही जानते हो अथवा जानते हो तो भी "हमारे पाप निष्फल हो"—इस भावना को लेकर प्रतिक्रमण करने वाला जो शब्दोच्चारण करे वह हमारे लिए भी हो" इस आशय से प्रतिक्रमण करने वाले का आश्रय ग्रहण करना 'निश्रा' है।

प्रश्न—ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के विशेष धर्म को जानना 'ज्ञान' कहलाता है।

प्रश्न—दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के सामान्य धर्म को जानना दर्शन कहलाता है। जिनेश्वर भगवतो द्वारा प्ररूपित नवतत्वो पर श्रद्धा करना भी दर्शन कहलाता है।

प्रश्न—चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारित्र का अर्थ है—आत्मा मे रमण करना, व्रतो का पालन करना। जिसके द्वारा आत्मा के साथ होते हुए कर्म का आश्रव एव बध रुके, ऐसे अठारह पापो का यावज्जीवन

तीन करण तीन योग से प्रत्याख्यान करना चारित्र कहलाता है।

प्रश्न—तप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस क्रिया से आत्मा के साथ बंधे हुए अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है, उसे 'तप' कहते हैं। तप से आत्मा की शुद्धि होती है।

प्रश्न—श्रावक के व्रत 'चरित्ताचरित्त' क्यों कहलाते हैं।

उत्तर—साधुओं के व्रतों को चारित्र कहते हैं और श्रावक के व्रत चारित्राचरित्र कहलाते हैं। चारित्र-अचारित्र अर्थात् स्थूल पाप व्यापार का त्याग करने रूप चारित्र और सूक्ष्म पाप व्यापार का त्याग नहीं करने रूप अचारित्र, देश चारित्र। श्रावक कुछ चारित्र ग्रहण करता है और कुछ नहीं, इसलिए श्रावक के व्रतों को चारित्राचरित्र कहा गया है।

प्रश्न—अतिचार किसे कहते है ?

उत्तर—व्रतों में दोष लगाने को अतिचार कहते हैं। (१) दर्प–बिना कारण जान-बूझकर व्रत तोड़ने की बुद्धि से (२) प्रमाद–व्रत के प्रति अनादर, अविवेक, विषय भोग में रुचि आदि से (३) प्रद्वेष–कषाय की तीव्रता से व्रतों में दोष लगाना तीव्र अतिचार है।

प्रश्न—अतिचारों का क्या प्रायश्चित्त है ?

उत्तर—मंद अतिचारों का प्रायश्चित "हार्दिक पश्चाताप" "मिच्छामि दुक्कडं" है। मध्यम और तीव्र अतिचारों का प्रायश्चित्त नवकारसी आदि तप हैं।

इच्छामि ठामि का॰ पाठ

यह पाठ सक्षिप्त प्रतिक्रमण है। इसमे सपूर्ण प्रतिक्रमण का सार आजाता है। इस पाठ से—दिवस सबधी दोषो की आलोचना की जाती है और आचार-विचार सबधी भूलो का प्रतिक्रमण किया जाता है।

इच्छामि ठामि ‡ काउस्सग्ग † जो मे देवसिओ * अइयारो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचितिओ अणायारो, अणिच्छियव्वो असावगपाउग्गो णाणे तह दसणे चरित्ताचरित्ते सुए, सामाइए, तिण्ह गुत्तीण, चउण्ह कसायाण, पचण्हमणुव्वयाण तिण्ह गुणव्वयाण चउण्ह सिक्खावयाण बारसविहस्स सावगधम्मस्स ज खडिय ज विराहिय तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ—जो मे–जो मैने, देवसिओ–दिवस सबधी, अइयारो–अतिचार, कओ–किया हो, काइओ–काया

---

‡ हरिभद्रीयावश्यक प ७७८ मे 'ठाइउ' पाठ है।

† कायोत्सग के पहले 'इच्छामि ठाइउ काउस्सग्ग' और कायोत्सग मे 'इच्छामि आलोऊ' तथा अन्य स्थानो पर 'इच्छामि पडिक्कमिउ' पाठ बोलना चाहिये।

* 'देवसिओ' के स्थान पर रात्रि प्रतिक्रमण मे 'राइओ' पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिओ' चौमासी प्रतिक्रमण मे 'चउम्मासिओ' और सवत्सरी प्रतिक्रमण मे 'सवच्छरिओ' पाठ बोलना चाहिये।

संवंधी, **वाइओ**–वचन संवंधी, **माणसिओ**–मन संवंधी, **उस्सुत्तो**–उत्सूत्र सूत्र विपरीत कथन किया हो, **उम्मग्गो**–उन्मार्ग (जैन मार्ग के विरुद्ध मार्ग) ग्रहण किया हो **अकप्पो**–अकल्पनीय कार्य किया हो **अकरणिज्जो**–अकरणीय–नहीं करने योग्य कार्य किया हो **दुज्झाओ**–दुष्ट ध्यान ध्याया हो, **दुव्विचिंतिओ**–दुष्ट–अशुभ चितन किया हो, **अणायारो**–आचरण नही करने योग्य कार्य का आचरण किया हो, **अणिच्छियव्वो**–अनिच्छनीय की इच्छा की हो, **असावगपावग्गो**–श्रावक धर्म के विरुद्ध कार्य किया हो **णाणे तह दंसणे**–ज्ञान तथा दर्शन में, **चरित्ताचरित्ते**–श्रावक के देशव्रत मे **सुए**–श्रुत मे, **सामाइए**–सामायिक मे, **तिण्हं**–तीन **गुत्तीणं**–गुप्तियों की, **चउण्हं**–चार, **कसायाणं**–कषायो की **पंचण्हं**–पाच, **अणुव्वयाणं**–अणुव्रतों की **गुणव्वयाणं**–गुणव्रतों की **सिक्खावयाणं**–शिक्षाव्रतो की **बारसविहस्स**–बारह प्रकार के **सावगधम्मस्स**–श्रावक धर्म की, **जं**–जो, **खंडिय**–खडना की हो **विराहियं**–विराधना की हो, **तस्स**–उसका, **मिच्छा**–मिथ्या **मि**–मेरे लिए, **दुक्कडं**–पाप ।

भावार्थ––मै कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ । मैंने दिवस सवंधी जो अतिचार किया हो । काया संबंधी–अविनय आदि हुआ हो । वचन संबंधी–अशुभ वचन, असत्य, अपशब्द आदि बोला हो । मन संबंधी–अशुभ मन प्रवर्ताया हो, सूत्र से विरुद्ध प्ररूपणा की हो, जैन मार्ग का त्याग कर-गलत मार्ग-अन्य मार्ग ग्रहण किया हो, अकल्पनीय कार्य किया हो, नही करने योग्य कार्य किया हो, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, अशुभ

दुष्ट चिनन किया हो, आचरण नही करने योग्य कार्य का आचरण किया हो, अनिच्छनीय-इच्छा नही करने योग्य कार्य की इच्छा की हो, श्रावक धम के विरुद्ध काय किया हो, ज्ञान, दशन और चरित्ताचरित्त के विषय मे, श्रुत और समभाव रूप सामायिक के विषय मे, तीन गुप्ति के विषय मे अतिचार का सेवन किया हो, चार कषाय का उदय हुआ हो। पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धम की खडना की हो, विराधना की हो, तो उसका पाप मेरे लिए मिथ्या हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—उत्सूत्र किसे कहते है ?

उत्तर—मूल आगम को सूत्र कहते हैं। सूत्र विरुद्ध-श्रुत धर्म मे विपरीत आचरण उत्सूत्र है।

प्रश्न—उन्माग का क्या अथ है ?

उत्तर—उन्माग का अथ है-मार्ग के विरुद्ध आचरण करना। अर्थात चारित्र धम से विपरीत आचरण उन्मार्ग है। माग का अथ-परपरा भी है। अत परपरा के विरुद्ध आचरण करना यह अथ भी किया जाता है। क्षायोपशमिक भाव छोडकर मोहनीयादि कर्मो के उदय से प्रकट दुष्परिणाम रूप औदयिक भाव मे वश होना, उन्मार्ग है।

प्रश्न—अकल्पनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—चरण और करण का रूप धम व्यापार का नाम

कल्प है जो चरण करण के विरुद्ध आचरण किया जाता है, वह अकल्प–अकल्पनीय है।

प्रश्न—दुष्ट ध्यान कितने है ?

उत्तर—दो–१ आर्त्तध्यान और २ रौद्र ध्यान

प्रश्न—गुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर—मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना और शुभप्रवृत्ति करना गुप्ति कहलाता है। इसके तीन भेद है—१ मन गुप्ति २ वचन गुप्ति और ३ काय गुप्ति।

प्रश्न—कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करे, जिसके द्वारा ससार की वृद्धि हो उसे 'कषाय' कहते है। इसके चार भेद है–१. क्रोध २. मान ३. माया और ४. लोभ।

प्रश्न—अणुव्रत किसे कहते है ये कितने हैं ?

उत्तर—जो महाव्रतो की अपेक्षा अणु अर्थात् छोटे हो। ये पॉच है—१ स्थुल प्राणातिपात विरमण २. स्थुल मृषावाद त्याग ३ स्थुल अदत्तादान त्याग ४ स्वदार संतोष व्रत और ५ परिग्रह परिमाण व्रत।

प्रश्न—गुणव्रत किसे कहते है ?

उत्तर—जो अणुव्रतों को गुण अर्थात् लाभ पहुँचाते हो। गुणव्रत तीन हैं—१. दिशा परिमाण व्रत २.उपभोग परिभोग परिमाण व्रत ३. अनर्थ दंड त्याग–ये तीन गुणव्रत आत्मा में गुणो की वृद्धि करते है। अणुव्रतों में विशेषता उत्पन्न करने

वाले और पाप से अधिक बचाने वाले 'गुणव्रत' होते हैं।

प्रश्न—शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? और ये कितने हैं?

उत्तर—जो बारबार शिक्षा अर्थात् अभ्यास करने योग्य हैं वे शिक्षा व्रत कहलाते हैं ये चार हैं—१ सामायिक व्रत २ देशावकाशिकव्रत ३ पौषधोपवासव्रत और ४ अतिथिसंविभाग व्रत।

प्रश्न—खंडना और विराधना में क्या भेद है?

उत्तर—खंडना अर्थात् देशत (अल्प) भंग किया हो और विराधना अर्थात् अधिकांश—अधिक मात्रा में भंग किया हो।

प्रश्न—अकल्पनीय और अकरणीय में क्या अंतर है?

उत्तर—सावद्य भाषा बोलना आदि प्रवृत्तियां 'अकल्पनीय' है तथा अयोग्य सावद्य आचरण करना 'अकरणीय' है। इस प्रकार अकल्पनीय में अकरणीय का समावेश हो सकता है पर अकल्पनीय का समावेश अकरणीय में नहीं होता।

ज्ञान के अतिचारों का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ—१ जं वाइद्धं २ वच्चामेलियं ३ हीणक्खरं ४ अच्चक्खरं ५ पयहीणं ६ विणयहीणं ७ जोगहीणं ८ घोसहीणं ९ सुट्ठुदिण्णं १० दुट्ठुपडिच्छियं ११ अकाले कओ

सज्झाओ १२ काले न कओ सज्झाओ १३ असज्झाए सज्झाइयं १४ सज्झाए न सज्झाइयं भणता गुणता विचारता ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

कठिन शब्दार्थः--**आगमे**--आगम, **तिविहे**-तीन प्रकार का **पण्णत्ते**--कहा गया है, **तं जहा**--वह इस प्रकार है **सुत्तागमे**--सूत्रागम **अत्थागमे**--अर्थागम, **तदुभयागमे**--सूत्र और अर्थ रूप आगम, **आलोऊं**--आलोचना करता हूँ, **जं वाइद्धं**--सूत्र आगे-पीछे बोलना (अक्षरों को उलट-पुलट कर पढना) **वच्चामेलियं**--भिन्न-भिन्न स्थानो पर आये हुए समानार्थक पदो को एक साथ मिला कर पढ़ना **हीणक्खरं**--अक्षर कम बोले हो **अच्चक्खरं**--अधिक अक्षर बोले हो, **पयहीणं**--पदहीन पढ़ा हो--कोई पद छोड़ दिया हो, **विणयहीणं**--विनय रहित पढ़ा हो, **जोगहीणं**--योग हीन--मन, वचन, काया की स्थिरता न रख कर पढा हो, **घोसहीणं**--शुद्ध उच्चारण किये विना पढा हो, **सुट्ठुदिण्णं**--अविनीत को सूत्र पढाया हो, शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति है उससे अधिक पढ़ाना **दुट्ठुपडिच्छियं**--आगम को बुरे भाव से ग्रहण करना, **अकाले**--अकाल में, **कओ**--किया हो, **सज्झाओ**--स्वाध्याय, **काले**--काल में **न**--नही, **असज्झाए**--अस्वाध्याय, **सज्झाइयं**--स्वाध्याय ।

भावार्थः--सूत्र (मूल पाठ रूप) अर्थ रूप और सूत्र व अर्थ रूप-इस तरह तीन प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में जो

कोई अतिचार लगा हो तो मै उसकी आलोचना करता हूँ–यदि सूत्र के अक्षरो को उलट-पुलट कर पढा हो, अन्यान्य स्थानो पर आये हुए समानार्थक पदो को एक साथ मिला कर पढा हो, हीनाधिक अक्षर पढा हो, पद-हीन पढा हो, विनय रहित पढा हो, मन,वचन और काया को स्थिर न रख कर पढा हो, घोष रहित पाठ किया हो, शिष्य मे शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति हो उससे न्यूनाधिक पढाया हो, आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अकाल मे स्वाध्याय किया हो, काल मे स्वाध्यायान किया हो, अस्वाध्याय काल मे स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय काल मे स्वाध्याय नही किया हो। पढते हुए, गुनते–अर्थ को पढते हुए और विचारते–अर्थ का चिंतन करते हुए ज्ञान और ज्ञानवत पुरुषो की अविनय आशातना की हो, तो मेरा पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—आगम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे षड् द्रव्य, नवतत्त्वो और हेय ज्ञेय उपादेय का सम्यग्ज्ञान हो और मोक्ष मार्ग मे चलने की प्रेरणा मिले, उसे 'आगम' (सिद्धात) कहते हैं।

प्रश्न—सूत्रागम किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकरो ने अपने श्री मुख से जो भाव प्रकट किये, उन्हे गणधरो ने अपने कानो से सुनकर जिन आचारागादि आगमो की रचना की, उस शब्द रूप मूल आगम को

सूत्रागम (सुत्तागमे) कहते है।

प्रश्न—अत्थागमे (अर्थागम) किसे कहते है ?

उत्तर—तीर्थकरो ने अपने श्री मुख मे जो भाव प्रकट किये, उस भाव रूप-अर्थ आगम को अर्थागम कहते है यानी तीर्थंकर भगवान् द्वारा प्रतिपादित उपदेश 'अर्थागम' कहलाता है।

प्रश्न—तदुभयागमे का क्या अर्थ है।

उत्तर—वह आगम जिसमें सूत्र (मूल) और अर्थ दोनों हो।

प्रश्न—ज्ञान का अतिचार क्या है ?

उत्तर—सूत्र अर्थ या तदुभय रूप आगम को विधिपूर्वक न पढना अर्थात् उसके पढ़ने मे किसी प्रकार का दोप लगाना ज्ञान का अतिचार है। ज्ञान के चौदह अतिचार हैं।

प्रश्न—वाइद्ध-व्याविद्ध पढना किसे कहते है।

उत्तर—सूत्र को तोड़कर मणियों को बिखरने के समान सूत्र के अक्षर, मात्रा, व्यञ्जन, अनुस्वार, पद आलापक आदि को उलट-पुलट कर पढ़ना **वाइद्धं**—व्याविद्ध अतिचार है। ऐसा पढने से शास्त्र की सुंदरता नही रहती है तथा अर्थ का बोध भी अच्छी तरह नही होता।

प्रश्न—**वच्चामेलियं** अतिचार क्या है ?

उत्तर—सूत्रों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर आये हुए समानार्थकपदों को एक साथ मिला कर पढ़ना **वच्चामेलियं** अतिचार है। शास्त्र के भिन्न-भिन्न पदों को एक साथ पढ़ने से अर्थ विगड़ जाता है। विराम आदि लिये विना पढ़ना अथवा अपनी

बुद्धि से सूत्र के समान सूत्र बनाकर आचारांग आदि सूत्रों में डालकर पढ़ने से भी यह अतिचार लगता है।

प्रश्न—हीनाक्षर पढ़ना किसे कहते हैं?

उत्तर—इस तरह से पढ़ना कि जिसमें कोई अक्षर छूट जाय–हीनाक्षर कहलाता है। जैसे–"नमो आयरियाण" के स्थान पर 'य' अक्षर कम करके "नमो आरियाण" पढ़ना।

प्रश्न—अच्चक्खर क्या है?

उत्तर—अधिकाक्षर–अधिक अक्षर युक्त पढ़ना–पाठ के बीच में कोई अक्षर अपनी तरफ से मिला देना जैसे–"नमो उवज्झायाण" में 'रि' मिलाकर "नमो उवज्झारियाण" पढ़ना।

प्रश्न—पयहीण का क्या अर्थ है?

उत्तर—किसी पद को छोड़ कर पढ़ना पयहीण अतिचार है। जैसे "नमो लोएसव्वसाहूण" में 'लोए' पद कम करके "नमो सव्वसाहूण" पढ़ना।

प्रश्न—पद किसे कहते हैं?

उत्तर—अक्षरों के समूह को 'पद' कहते हैं। जिसका कोई न कोई अर्थ प्राप्त हो, वह पद कहलाता है।

प्रश्न—ये पांचों किसके अतिचार हैं?

उत्तर—उच्चारण सम्बन्धी अतिचार हैं।

प्रश्न—उच्चारण की अशुद्धि से क्या हानि है?

उत्तर—कई बार–१ अर्थ नष्ट हो जाता है

२ विपरीत अर्थ हो जाता है ३ कई वार आवश्यक अर्थ में कमी रह जाती है ४ कई वार अधिकता हो जाती है ५ कई वार सत्य किंतु अप्रासंगिक अर्थ हो जाता है। इस प्रकार कई हानियां है। अतः उच्चारण अत्यंत शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न—उच्चारण शुद्धि के लिए क्या करना चाहिये ?

उत्तर—उच्चारण शुद्धि के लिए-१ सूत्र के एक-एक अक्षर, मात्रादि को ध्यान से पढ़ना चाहिये २ ध्यान से कण्ठस्थ करना चाहिये और ध्यान से फेरना चाहिये, ऐसा करने से उच्चारण प्रायः शुद्ध होता है।

प्रश्न—विणयहीण अतिचार क्या है ?

उत्तर—विणयहीणं-विनयहीन अर्थात् शास्त्र तथा पढ़ाने वाले का समुचित विनय न करना। ज्ञान और ज्ञान दाता के प्रति, ज्ञान लेने से पहले, ज्ञान लेते समय तथा ज्ञान लेने के वाद में विनय (वंदनादि) नही करके अथवा सम्यग् विनय नही करके पढ़ना विनयहीणं अतिचार है।

प्रश्न—जोगहीणं (योगहीन) किसे कहते है ?

उत्तर—जोगहीणं-योगहीन अर्थात् सूत्र पढ़ते समय मन, वचन और काया को जिस प्रकार स्थिर रखना चाहिये, उस प्रकार नही रखना। योगों को चंचल रखना, अशुभ व्यापार में लगाना और ऐसे आसन से वैठना, जिससे शास्त्र की आशातना हो, योगहीन दोष है।

प्रश्न—घोसहीणं दोष क्या है ?

उत्तर—घोसहीण–घोपहीन अर्थात् उदात्त●, अनुदात्त+, स्वरित●, सानुनासिक× और निरनुनासिक– आदि घोषो से रहित पाठ करना। किसी भी स्वर या व्यंजन को घोष के अनुसार ठीक न पढ़ना, अथवा ज्ञान दाता जिस शब्द छन्द पद्धति से उच्चारण करावे, वैसा उच्चारण करके नही पढ़ना घोसहीण दोष है।

प्रश्न—ये तीनो किसके अतिचार है ?

उत्तर—ये पढ़ने की अविधि सम्बन्धी अतिचार हैं।

प्रश्न—इनसे क्या हानि होती हैं ?

उत्तर—विनयहीनता से प्राप्त ज्ञान यथासमय काम नही आता–सफल नही होता। योगहीनता से ज्ञान की प्राप्ति शीघ्र नहीं होती, शुद्ध आवर्तन नही होना, आलोचना प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ सफल नही होती। घोपहीनता से सूत्र का आत्मा पर पूर्ण प्रभाव नही पडता। अत तीनो अतिचारो को दूर करना चाहिये।

प्रश्न—सुट्ठुदिण्ण किसे कहते हैं ?

उत्तर—यहा 'सुट्ठु' शब्द का अर्थ है–शक्ति या योग्यता से अधिक। शिष्य मे शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति है

● उदात्त—ऊँचे स्वर से पाठ करना।

+ अनुदात्त—नीचे स्वर से पाठ करना।

● स्वरित—मध्यम स्वर से पाठ करना।

× सानुनासिक—नासिका और मुख दोनों से उच्चारण करना।

– निरनुनासिक—बिना नासिका के केवल मुख से उच्चारण करना।

उससे अधिक पढाना सुट्ठुदिण्णं कहलाता है।

प्रश्न—दुट्ठुपडिच्छियं किसे कहते हैं?

उत्तर—आगम को बुरे भाव से ग्रहण करना।

प्रश्न—अकाल स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस काल में (चार संध्याओं में) सूत्र स्वाध्याय नही करनी चाहिये या जो सूत्र जिस काल (दिन रात्रि के दूसरे तीसरे प्रहर) में नही पढना चाहिए, उस काल में स्वाध्याय करने को अकाल स्वाध्याय कहते हैं। सूत्र दो प्रकार के है-कालिक * और उत्कालिक ÷। कालिक सूत्रों को उनके लिए निश्चित समय के अतिरिक्त पढ़ना अतिचार है।

प्रश्न—'**काले न कओ सज्झाओ**' अतिचार क्या है?

उत्तर—जिस सूत्र के लिए जो काल निश्चित किया गया, उस समय स्वाध्याय न करना दोष है।

प्रश्न—अकाल स्वाध्याय और काल अस्वाध्याय मे क्या हानि है?

उत्तर—जैसे जो राग या रागिनी जिस काल में गाना चाहिए, उससे भिन्न काल में गाने से अहित होता है, वैसे ही अकाल स्वाध्याय से अहित होता है तथा यथाकाल स्वाध्याय

---

* जिन सूत्रो को पढने के लिए निश्चित समय का विधान हो, वे 'कालिक' कहे जाते हैं। जैसे—उत्तराध्ययन, निशीथ, व्यवहार आदि।

÷ जिन के लिये समय की कोई मर्यादा नही है, वे 'उत्कालिक' कहे जाते हैं। जैसे—दशवैकालिक, नदी, प्रज्ञापना आदि।

नहीं करने से ज्ञान मे हानि तथा अव्यवस्थितता का दोष होता है । इसलिये ये अतिचार वर्ज्य है ।

प्रश्न—अस्वाध्याय स्वाध्याय किसे कहते है ?

उत्तर—अस्वाध्याय अर्थात् ऐसा कारण या समय उपस्थित होना जिसमे शास्त्र की स्वाध्याय वर्जित है, उसमे स्वाध्याय करना, असज्झाए सज्झाओ अतिचार है । अस्वाध्याय के ३४ कारण कहे गये हैं × ।

प्रश्न—सज्झाए न सज्झाओ अतिचार क्या है ?

उत्तर—सज्झाए न सज्झाओ अर्थात् स्वाध्याय, काल मे स्वाध्याय न करना दोष है ।

प्रश्न—अस्वाध्याय मे स्वाध्याय और स्वाध्याय मे अस्वाध्याय मे क्या हानि है ?

उत्तर—अशुद्धि आदि मे स्वाध्याय करने से ज्ञान के प्रति अनादर होता है, लोक निंदा होती है । विषम समय मे स्वाध्याय न देवकोपादि हानि होती है ।

प्रश्न—"स्वाध्याय करूगा" इत्यादि व्रत प्रत्याख्यान लिए बिना 'काल मे स्वाध्याय न किया हो ?' आदि अति-

---

× आकाश संबंधी १० अस्वाध्याय, औदारिक संबंधी १० अस्वाध्याय
२१–२५ आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा का दिन रात ।
२६–३० इन पूर्णिमा के बाद की प्रतिपदा का दिन रात ।
३१–३४ प्रात मध्याह्न सध्या और अर्द्ध रात्रि का १–१ मुहूर्त उपरोक्त चौतीस अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिये ।

चार लगते ही नही, तब उनका प्रतिक्रमण क्यों किया जाय ?

उत्तर--प्रतिक्रमण केवल अतिचार-शुद्धि के लिए ही नही वरन् अतिचारों के ज्ञान, उनके संबंध में शुद्ध श्रद्धा, उन्हे टालने की भावना आदि के लिए किया जाता है। जैसे-"मै चोरी नही करूँगा"--इस व्रत को लेने पर जैसे चोरी करने से पाप लगता है वैसे ही चोरी का व्रत न लेने वाले को भी चोरी करने पर पाप लगता ही है-भले ही वह व्रत के अतिचार रूप से न लगे, वह पाप से मुक्त नहीं रहता। अतः जैसे व्रतधारी और अव्रती दोनों को चोरी के पाप का प्रतिक्रमण आवश्यक है, वैसे ही स्वाध्याय आदि का नियम न लेने वाले को भी काल स्वाध्याय आदि न करने का प्रतिक्रमण करना ही चाहिये क्योंकि उसे भी काल-स्वाध्याय न करने आदि का पाप लगता ही है।

नोट--यह उत्तर उन सभी अतिचारों के लिए समझना चाहिये. जिनके संबंध में उपर्युक्त प्रश्न उठता है।

दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥
परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्ण कुदंसणवज्जणा य, सम्मत्त सद्दहणा ॥२॥

इअ सम्मत्तस्स पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोऊ–सका, कखा, वितिगिच्छा, परपासडपससा, परपासडसथवो इस प्रकार श्री समकितरत्न पदार्थ के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊ—१ वीतराग के वचन मे शका की हो २ परदर्शन की आकांक्षा की हो ३ धर्म के फल मे सदेह किया हो ४ परपाखडी की प्रशंसा की हो ५ पर पाखडी का परिचय किया हो, मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मैल लगा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

शब्दार्थ--अरिहतो–अरिहत भगवान्, मह–मेरे, देवो–देव हैं, जावज्जीवाए–जीवन पयन्त, सुसाहुणो–सुसाधु, गुरुणो–गुरु है, जिणपण्णत्त–जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित, तत–तत्त्व (धर्म) है, इअ–यह, सम्मत्त–सम्यक्त्व, मए–मैंने, गहिय–ग्रहण किया है, परमत्थसथवो वा–परमार्थ–नवतत्त्वो का ज्ञान प्राप्त करना, सुदिट्ठपरमत्थसेवणावावि–परमार्थ के जानने वालो की सेवा करना, वावण्णकुदसणवज्जणा–सम्यक्त्व से भ्रष्ट और अन्यमतियों की प्रशसा नहीं करना, सम्मत्त–सम्यक्त्व के, सद्दहणा–श्रद्धान है। इअ–इस प्रकार, सम्मत्तस्स–सम्यक्त्व के पच–पांच, अइयारा–अतिचार, पेयाला–प्रधान, जाणियव्वा–जानने योग्य है, न समायरियव्वा–आचरण करने योग्य नहीं है,

तंजहा–वे इस प्रकार हैं, ते–उनकी आलोचना करता हूँ। **संका**–वीतराग के वचन में शंका की हो, **कखा**–परदर्शन की आकाक्षा की हो, **वितिगिच्छा**–धर्म के फल मे संदेह किया हो या साधु साध्वी के मलिन वस्त्र देखकर घृणा की हो, **परपासंड पससा**–पर पाखडी की प्रशंसा की हो, **परपासंड-संथवो**–पर पाखंडी का परिचय किया हो।

भावार्थ—अरिहंत भगवान मेरे देव हैं। जीवन पर्यन्त सच्चे साधु गुरु है। जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्त्व (धर्म) है इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व ग्रहण की है। परमार्थ–नव तत्त्वो का ज्ञान करना २ परमार्थ के जानने वालो की सेवा करना ३ जिसने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है उसकी संगति नहीं करना ४ अन्यमतियों की संगति से दूर रहना–ये चार सम्यक्त्व के श्रद्धान है। इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय मे पाच प्रधान अतिचार जो जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है उनमें से जो कोई अतिचार लगा है उनकी मैं आलोचना करता हूँ। यथा–१ वीतराग के वचन में शंका की हो २ परदर्शन की आकाक्षा की हो ३ धर्म के फल मे संदेह किया हो या साधु साध्वी के मलिन वस्त्र देख कर घृणा की हो ४ परपाखंडी की प्रशंसा की हो ५ पर पाखंडी का परिचय किया हो, मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मैल लगा हो तो मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्न—सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर दृढ श्रद्धा रखना सम्यक्त्व कहलाता है। जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्त्वों में यथार्थ विश्वास करना सम्यक्त्व है। मिथ्यात्व मोहनीय के क्षयोपशम से उत्पन्न आत्मा के शुद्ध परिणाम को सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न—सुदेव कौन है ?

उत्तर—जो राग द्वेष से रहित हैं, अठारह दोष रहित और बारह गुण सहित हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। जिनकी वाणी में जीवों का एकान्त हित है, जिनकी कथनी व करनी मे अंतर नहीं है जो देवों के भी देव हैं। ऐसे तीन लोक के वंदनीय पूजनीय परम आराध्य परमेश्वर प्रभु अरिहंत हमारे सुदेव हैं।

प्रश्न—सुगुरु कौन हैं ?

उत्तर—जो तीन करण तीन योग से पंच महाव्रतों का पालन करते हैं। कंचन, कामिनी के त्यागी हैं। पांच समिति तीन गुप्ति का निर्दोष पालन करते हैं। भिक्षाचरी द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए स्वयं संसार सागर से तिरते हैं अन्य जीवों को भी तिरने का उपदेश देते हैं वे सुसाधु कहलाते हैं। जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश देने वाले सच्चे साधु ही सुगुरु हैं।

प्रश्न—सुधर्म-सच्चा धर्म कौन सा है ?

उत्तर—आत्मा को दुर्गतियों से बचाकर मोक्ष की ओर ले जाने वाले विशुद्ध मार्ग को 'सुधर्म' कहते हैं। जिनेश्वर प्रभु द्वारा जीवों के शाश्वत सुख के लिये प्ररूपित अहिंसा प्रधान साधना ही सुधर्म है।

प्रश्न—सम्यक्त्व का क्या महत्त्व है ?

उत्तर—सम्यक्त्व-अरिहंत भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का मूल है। जिसने अंतर्मुहूर्त के लिए भी सम्यक्त्व गुण का स्पर्श कर लिया है वह जीव निश्चय से मोक्ष मे जाता है। जीव ने सम्यक्त्व गुण प्रकट होने के पहले यदि परभव का आयुष्य नही वांधा हो और सम्यक्त्व प्रकट होने के वाद उसका वमन न हुआ हो अर्थात् सम्यक्त्व अवस्था में जीव ने आयुष्य का वध किया हो तो वह नियमा वैमानिक देव ही वनता है। सम्यक्त्व गुण प्रकट हुए विना-ग्रहण किए हुए व्रतों का सच्चा फल नही मिलता। सम्यक्त्व, गृहस्थ का विशेष धर्म है।

प्रश्न—जिन वचनों मे शंका क्यों होती है, उसे कैसे दूर करना चाहिये ?

उत्तर—(१) वुद्धि की न्यूनता के कारण (२) सम्यक् रूप से समझाने वाले गुरुओ के अभाव मे (३) जीव-अजीवादि भावों का गहन स्वरूप होने से (४) ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से अथवा (५) हेतु दृष्टांत आदि समझने के साधनो के अभाव में कोई विषय यथार्थ रूप से समझने में नही आ पाता है तो शंका की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में जीव अरिहंतो के केवलज्ञान और वीतरागता का विचार करके, अपनी वुद्धि की मंदता को सोचकर शका दूर करे। अपनी स्वयं की कमी को स्वीकार करते हुए सोचे कि—"**तमेव सच्च णिसंकं ज जिणेहि पवेइयं**" —जिनेश्वर

भगवान् ने जो प्ररूपित किया है वही यथार्थ है, सत्य है। इस प्रकार जिनेश्वर कथित सूत्रों के एक अक्षर मात्र पर भी संदेह व अरुचि नही करता हुआ शका को दूर करे।

प्रश्न—क्या जिज्ञासा रूप शका अतिचार है?

उत्तर—जिज्ञासा रूप शका अतिचार नहीं है परन्तु ज्ञानी गुरुओं से जिज्ञासा रूप शका का शीघ्र समाधान कर लेना चाहिये, अन्यथा वही जिज्ञासा अतिचार रूप शका बन सकती है।

प्रश्न—परमत ग्रहण की इच्छा क्यों होती है?

उत्तर—अन्यमतियो-कुतीर्थियो-अन्यदर्शनियों के तप त्याग, आडम्बर, चमत्कार, पूजा, प्रदर्शन आदि देखकर अथवा उनकी कथ, विवेचना आदि सुनकर अन्यमत ग्रहण करने की आकाक्षा होती है।

जिस प्रकार ससार में सच्चे मोती की अपेक्षा खोटे मोती दिखने में सुन्दर और सस्ते होते हैं, सोने की अपेक्षा कासे की गजन ज्यादा होती है, सज्जन की अपेक्षा दुर्जन का आडबर आकर्षक होता है उसी प्रकार अज्ञान कष्ट रूप तप करने वाले बाल तपस्वियों का तप लोगों को आश्चर्य मुग्ध करने वाला भी हो सकता है और कई तो विद्या मत्र की सिद्धि से भोले भाले व्यक्ति आश्चर्य चकित हो ऐसे कार्य करने वाले भी हैं ऐसे बाल तपस्वियों के तप विद्या आदि के प्रभाव में आकर स्वदर्शन में चित्त चचलता हो जाती है।

प्रश्न—परदर्शन की कांक्षा अतिचार क्यों है?

नादि के अभाव में शरीर तथा धोने के अभाव में वस्त्र आदि को मैल से मलिन देखकर निंदा करना अथवा स्नान नहीं करने से—शरीर के मैल और पसीने के मिलने से साधुओं के शरीरादि से दुर्गंध आती है तो अचित्त पानी से स्नानादि करे तो क्या वाधा ? इस तरह प्रतिकूल वाते करना, घृणा करना, विचिकित्सा कहलाता है। साधुओं के आचार के प्रति ऐसी घृणा–जुगुप्सा भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म पर अविश्वास का ही परिणाम है अतः सम्यक्त्व का दूषण होने से अतिचार है।

बारह व्रतों के अतिचार

पहला स्थूल–प्राणातिपात विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं–१ रोष वश गाढ़ा बन्धन बांधा हो, २ गाढ़ा घाव घाला हो, ३ अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, ४ अधिक भार भरा हो, ५ भात-पानी का विच्छेद किया हो (खाने-पीने में रुकावट डाली हो) जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दूजा स्थूल–मृषावाद विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ–१ सहसाकार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो,

२ एकान्त मे गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियो पर झूठा आरोप लगाया हो, ३ स्त्री पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो, ४ मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, ५ कूडा लेख लिखा हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीजा स्थूल–अदत्तादान विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊ–१ चोर की चुराई वस्तु ली हो, २ चोर को सहायता दी हो, ३ राज्य विरुद्ध काम किया हो, ४ कूडा तोल कूडा माप किया हो, ५ वस्तु मे भेल सभेल की हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चौथा स्थूल–स्वदार संतोष‡ परदार विवर्जनरूप मैथुन विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ–१ इत्तरियपरिग्गहिया से गमन किया हो, २ अपरिग्गहिया से गमन किया हो, ३ अनगक्रीडा की हो, ४ पराये का विवाह-नाता कराया हो, ५ काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारो मे से मुझे

‡ 'स्वदार संतोष परदार विवर्जन' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को 'स्वपति संतोष परपुरुष विवर्जन रूप' ऐसा बोलना चाहिये।

कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पाँचवाँ स्थूल-परिग्रह परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ-१ हिरण्य-सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, २ धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ३ दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो ४ खेत्त-वत्थु का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ५ कुविय-सोना-चांदी के सिवाय और धातु का परिमाण अतिक्रमण किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

छठे दिशिव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ-१ ऊँची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, २ नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ३ तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ४ क्षेत्र बढ़ाया हो, ५ क्षेत्र परिमाण के भूल जाने से पंथ का सन्देह पड़ने पर आगे चला हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सातवाँ उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ-पच्चक्खाण उपरांत १ सचित्त का आहार किया हो, २ सचित्त

प्रतिबद्ध का आहार किया हो, ३ अपक्व का आहार किया हो, ४ दुपक्व का आहार किया हो, ५ तुच्छौषधि* का आहार किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

पद्रह कर्मादान–जो श्रावक (श्राविका) को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है, उनके विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ—
१ इगालकम्मे, २ वणकम्मे, साडीकम्मे, ४ भाडीकम्मे, ५ फोडीकम्मे, ६ दतवाणिज्जे, ७ लक्खवाणिज्जे, ८ रसवाणिज्जे, ९ केसवाणिज्जे, १० विसवाणिज्जे, ११ जतपीलणकम्मे, १२ निल्लछणकम्मे १३ दवग्गि-दावणया, १४ सरदहतलायसोसणया, १५ असईजण-पोसणया। जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ–१ काम-विकार पैदा करने वाली कथा की हो, २ भड-कुचेष्टा की हो,

---

* जिसमे खाने योग्य अश-थोडा-हो-और-अधिक फेंकना पडे, उसे 'तुच्छौषधि' कहते हैं—जैसे मूग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गडेरी) आदि।

३ मुखरी-वचन बोला हो, ४ अधिकरण× जोड़ रखा हो ५ उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

नववें सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं–१ मन २ वचन और ३ काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, ४ सामायिक की स्मृति न की हो, ५ समय पूर्ण हुए विना सामायिक पारी हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दसवें देसावगासिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ–१ नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, २ भिजवाई हो, ३ शब्द करके चेताया हो, ४ रूप दिखा करके अपने भाव प्रगट किये हो, ५ कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ–१ पौषध में शय्या-संथारा न देखा हो या अच्छी तरह न देखा हो, २ प्रमार्जन (पडिलेहण) न किया हो या अच्छी तरह न किया हो,

× अधिकरण—आरम्भ के साधन—ऊखल, मुसल, हथियार, औजार आदि।

३ उच्चार-पासवण की भूमि को देखी न हो या अच्छी तरह न देखी हो, ४ पूजी न हो या अच्छी तरह न पूजी हो, ५ पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

बारहवें अतिथिसविभाग व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ—१ अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, २ अचित्त वस्तु सचित्त से ढाकी हो, ३ साधुओ को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, ४ आप सूझता होते हुए भी दूसरो से दान दिलाया हो, ५ मच्छर (ईर्ष्या) भाव से दा। दिया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सलेखणा के पाच अतिचारो का पाठ

अपच्छिम-मारणातिय सलेहणा झूसणा आराहणाए पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा त जहा ते आलोऊ—इहलोगाससप्पओगे, परलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, कामभोगाससप्पओगे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

कठिन शब्दार्थ—अपच्छिम-अंतिम, **मारणांतिय**-मरण समय संवधी, **संलेहणा**-संलेखना, **झूसणा**-सेवन करना, **आराहणा**-आराधना, **इहलोगासंसप्पओगे**-इस लोक में राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की इच्छा की हो, **परलोगासंसप्पओगे**-परलोक में देवता इन्द्र आदि के सुख की इच्छा की हो, **जीवियासंसप्पओगे**-महिमा प्रशंसा फैलने पर वहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, **मरणासंसप्पओगे**-कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा की हो, **कामभोगासंसप्पओगे**-कामभोग की अभिलाषा की हो।

भावार्थ—अंतिम मरण समय संवंधी संलेखना (कषाय और शरीर को कृश करने के लिये किया जाने वाला तप विशेप) के विषय में कोई दोप लगा हो—मैंने राजा चक्रवर्ती आदि के इस लोक संवंधी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक संवंधी सुख की आकांक्षा की हो, प्रशंसा फैलने पर वहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, दुःख से व्याकुल हो कर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा काम भोग की अभिलाषा की हो तो मै उसकी आलोचना करता हूँ। मेरा वह सव पाप निष्फल हो।

अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान आलोऊं—१ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध,

७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० राग, ११ द्वेष, १२ कलह, १३ अभ्याख्यान, १४ पैशुन्य, १५ परपरिवाद, १६ रति-अरति, १७ मायामृषावाद, १८ मिथ्यादर्शन-शल्य। इन अठारह पापस्थानों मे से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनंत सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ—प्राणातिपात-जीवहिंसा-प्राणियो का वध, मृषावाद-झूठ, अदत्तादान-बिना दिये ग्रहण करना, चोरी, मैथुन-अब्रह्मचर्य, कुशील, परिग्रह-मूर्च्छा, ममत्व, क्रोध-रोष, गुस्सा, मान--अहंकार घमण्ड, माया-छल, कपट, लोभ-लालच तृष्णा, राग-माया और लोभ जन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम, द्वेष-क्रोध और मान जन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम, कलह-क्लेश झगडा, अभ्याख्यान-झूठा आल देना, कलक लगाना, पैशुन्य-दूसरे की चुगली करना, परपरिवाद-दूसरो की निंदा करना, रति-बुरे कार्यों मे चित्त का लगाना, अरति-ध्यान सयम आदि अच्छे कार्यों मे चित्त का न लगाना, माया मृषावाद-कपट सहित झूठ बोलना, मिथ्यादर्शनशल्य-कुदेव, कुगुरु, कुधर्म मे श्रद्धा होना अथवा अतत्त्व मे तत्त्व और तत्त्व मे अतत्त्व की श्रद्धा होना।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आत्मा को मलिन करे, उसे पाप कहते हैं। जो अशुभ योग से सुखपूर्वक बांधा जाता है और दुःख पूर्वक भोगा जाता है, वह पाप है। पाप अशुभ प्रकृति रूप है। पाप का फल कड़वा, कठोर और अप्रिय होता है। पाप के मुख्य अठारह भेद हैं।

प्रश्न—पापों का स्वरूप समझने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—अठारह पापो का स्वरूप समझने से पाप कार्यो से वचा जा सकता है और धर्म तथा पुण्य के कार्यों में प्रवृत्ति की जा सकती है।

प्रश्न—परिग्रह और लोभ में क्या अन्तर है?

उत्तर—प्राप्त वस्तु को ग्रहण करना और उसके प्रति ममत्व रखना परिग्रह है और अप्राप्त वस्तु की चाह करना लोभ है।

प्रश्न—रति और अरति पाप का क्या स्वरूप है? इससे किस प्रकार वचा जाय?

उत्तर—मनोज्ञ विषयों पर राग और संयम विरुद्ध कार्यों में आनंद मानने को 'रति' तथा अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष और संयम संबंधी कार्यों में उदासीनता को 'अरति' कहते हैं।

पुद्गलों का और जीवों का तथा उनकी पर्यायों का वास्तविक स्वरूप जान कर अशुद्ध और पर-पर्यायों से अरुचि उत्पन्न करना और स्व-शुद्ध पर्यायों की ओर आकर्षित होना ही इस पाप से वचने का उपाय हैं।

प्रश्न—अठारह पापो मे सबसे बड़ा पाप किसे माना है ?
उत्तर—अठारहवां-मिथ्यादर्शनशल्य पाप सबसे भयकर है।

काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ

काउस्सग्ग मे मन, वचन, काया चलित हुए हो, आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

समुच्चय पाठ

इस प्रकार १४ ज्ञान के, ५ समकित के, ७५ (६० १५) बारह व्रतो के और ५ सलेखना के—इन ९९ अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूसरा आवश्यक—चउवीसत्थव

प्रथम सामायिक आवश्यक के वाद दूसरा आवश्यक है- चतुर्विंशतिस्तव। सावद्य योग से विरति सामायिक आवश्यक है। सावद्य योग से निवृत्ति प्राप्त करने के लिये-जीवन को राग द्वेष रहित—समभाव युक्त विशुद्ध वनाने के लिये साधक को सर्वोत्कृष्ट जीवन वाले महापुरुषों के आलम्वन की आवश्यकता रहती है। चौबीस तीर्थंकर—जो रागद्वेष रहित समभाव में स्थित वीतराग पुरुष है, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, त्याग वैराग्य और संयम साधना के महान् आदर्श है, उनकी स्तुति करना उनके गुणों का कीर्तन करना 'चतुर्विंशतिस्तव' कहलाता है।

तीर्थंकरो, वीतराग देवो की स्तुति करने से साधक को महान् आध्यात्मिक बल व आदर्श जीवन की प्रेरणा मिलती है। अहंकार का नाश होता है। गुणो के प्रति अनुराग वढ़ता है और साधना का मार्ग प्रशस्त वनता है। शुभ भावो से दर्शन विशुद्धि होती है और दर्शन विशुद्धि से आत्मा कर्म मल से रहित होकर शुद्ध निर्मल हो जाती हैं—परमात्म पद को प्राप्त कर लेती है और वीतराग प्रभु के समान वन जाती है।

चतुर्विंशतिस्तव के फल के लिये उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ मे पृच्छा की है—

"चउव्वीसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?"

—हे भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है ?

"चउव्वीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।"

—हे गौतम ! चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन-विशुद्धि होती है ।

समभाव मे स्थित आत्मा ही वीतराग प्रभु के गुणो को जान सकता है उनकी प्रशसा कर सकता है । अर्थात् जब सामायिक की प्राप्ति हो जाती है तब ही भावपूर्वक तीर्थंकरो की स्तुति की जा सकती है । अतएव सामायिक आवश्यक के बाद चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक रखा गया है ।

विधि—दूसरे आवश्यक मे लोगस्स का पाठ प्रकट बोल कर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले ।

लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहते कित्तइस्स, चउवीस पि केवली ॥१॥
उसभमजियं च वदे, सभवमभिणंदणं च सुमइ च ।
पउमप्पह सुपास, जिणं च चदप्पह वदे ॥ २ ॥
सुविहिं च पुप्फदत, सीअल सिज्जस वासुपुज्ज च ।
विमलमणंत च जिणं, धम्म सति च वदामि ॥३॥
कुथु अर च मल्लि, वदे मुणिसुव्वय नमि जिण च ।

मणत च–श्री विमलनाथ और अनन्तनाथ स्वामी को, **धम्म संति च**–श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ स्वामी को, **कुंथु**–श्री कुंथुनाथ स्वामी को, **अर** श्री अरनाथ स्वामी को, **मल्लि**–श्री मल्लिनाथ स्वामी को, **मुणिसुव्वय**–श्री मुनिसुव्रत स्वामी को **नमिजिणं**–श्री नमिनाथ जिनेश्वर को, **रिट्ठनेमिं** श्री अरिष्टनेमिनाथ को, **पास**–श्री पार्श्वनाथ स्वामी को, **वद्धमाण**–श्री महावीर स्वामी को, **एवं**–इस प्रकार, **मए**–मेरे द्वारा, **अभिथुआ**–स्तुति किये हुए, **विहुयरयमला**–पाप रज के मल से रहित, **पहीणजरमरणा**–जरा (बुढापा) तथा मरण से मुक्त, **तित्थयरा**-तीर्थंकर, **मे**–मुझ पर, **पसीयंतु**–प्रसन्न हो, **कित्तिय**–कीर्तित कीर्तन किये हुए **वंदिय**–वंदना किये हुए, **महिया**–पूजन किये हुए, **जे**–जो, **उत्तमा**–उत्तम, **सिद्धा**–सिद्ध भगवान् ए–वे, **आरुग्ग**–आरोग्य–सिद्धत्व अर्थात आत्म शांति, **बोहिलाभं**–धर्म प्राप्ति का लाभ, **समाहिवरमुत्तमं**–सर्वोत्कृष्ट समाधि को, **दिंतु**–देवे, **चंदेसु**–चन्द्रो से भी, **णिम्मलयरा**–विशेष निर्मल, **आइच्चेसु**–सूर्यो से भी **अहियं**–अधिक, **पयासयरा**–प्रकाश करने वाले, **सागरवर**–सागर के समान, **गंभीरा**–गंभीर, **सिद्धा**–सिद्ध भगवान्, **सिद्धिं**–सिद्धि (मुक्ति) **मम**–मुझ को **दिसंतु**–देवें।

भावार्थ—सम्पूर्ण लोक मे धर्म का उद्योत करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओं को जीतने वाले केवलज्ञानी चौवीस तीर्थंकरो की मैं स्तुति करूंगा। श्री ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभि-

नंदनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, सुविधिनाथजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी, वासुपुज्यजी, विमलनाथजी, अनंतनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी कुंथुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथजी अरिष्टनेमिजी, पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामीजी। इन चौवीस तीर्थंकरो को मै वंदना-नमस्कार करता हूँ। जिनकी मैने स्तुति की है, जो कर्म रूप मल से रहित है, जो जरा-मरण से मुक्त हैं और जो धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक हैं, वे चौवीसों जिनेश्वर देव मुझ पर प्रसन्न होवें। जिनका कीर्तन, वंदन और भाव पूजन किया गया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम हैं वे सिद्ध (तीर्थंकर) भगवान् मुझे आरोग्य–सिद्धत्व अर्थात् आत्मशांति, सम्यग्दर्शनादि का पूर्णलाभ तथा सर्वोत्कृष्ट समाधि प्रदान करे। जो चंद्रमाओं से भी विशेष निर्मल है सूर्यो से भी अधिक प्रकाशमान है और जो स्वयंभूरमण जैसे महासमुद्र के समान गभीर है, ऐसे सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि (मुक्ति) देवें।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—लोक किसे कहते है? इसके मुख्य कितने भाग हैं?

उत्तर—जैन शास्त्रों मे इस सम्पूर्ण दुनियां को लोक कहते हैं। जिसमें धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य हों, वह लोक कहलाता है। इसके मुख्य तीन भाग हैं—१ ऊर्ध्वलोक २ अधोलोक और ३ तिरछा लोक।

प्रश्न—लोगस्स का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर—चतुर्विशतिस्तव का पाठ

प्रश्न---इसे चतुर्विशतिस्तव का पाठ क्यो कहा जाता है ?

उत्तर---क्योकि इसमे चौबीस तीर्थकरो की स्तुति की गयी है।

प्रश्न---चतुर्विशतिस्तव से क्या लाभ है ?

उत्तर---चतुर्विशतिस्तव से सम्यग्दर्शन विशुद्ध होता है उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९/९ मे भगवान् ने फरमाया है--
"चउव्वीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ।"

प्रश्न---तीर्थ किसे कहते है ?

उत्तर---जिसके द्वारा ससार समुद्र से तिरा जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। इसके चार भेद है---१ साधु, २ साध्वी ३ श्रावक और ४ श्राविका।

प्रश्न---तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

उत्तर---जो धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं उन्हे तीर्थंकर कहते हैं।

प्रश्न---सच्चा तीर्थ कौनसा है ?

उत्तर---ससार समुद्र से तिराने वाला, दुर्गति से उद्धार करने वाला धर्म ही सच्चा तीर्थ है।

प्रश्न---'जिन' का क्या अर्थ है ?

उत्तर---जिन का अर्थ है---विजेता। जो राग-द्वेष, कषाय आदि को जीतता है, उसे 'जिन' कहते है।

प्रश्न---यहा कीर्तन से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर---वाणी द्वारा स्तुति करना।

प्रश्न—यहाँ वंदन किसे कहा है ?

उत्तर—शरीर द्वारा पंचांग नमस्कार करना।

प्रश्न—पूजन मे क्या आशय है ?

उत्तर—मन द्वारा अर्चना करना, हार्दिक समर्पण करना।

प्रश्न—कीर्तन तथा वंदन मे क्या लाभ है ?

उत्तर—(१) ज्ञान बढ़ता है (२) श्रद्धा बढती है (३) नये पापकर्म नही बंधते है (४) पुण्य का बंध होता है (५) पुराने पाप कर्म क्षय होते हैं।

प्रश्न—क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उत्तर—नही, क्योंकि वो वीतराग—रागद्वेष से रहित होते है।

प्रश्न—तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना क्यों की जाती है ?

उत्तर—ऐसी प्रार्थना करने हममें भी मोक्ष प्राप्ति की योग्यता आती है, हममें मोक्ष प्राप्ति की योग्यता आना ही 'तीर्थंकरों का प्रसन्न होना' माना गया है।

प्रश्न—तीर्थंकर मोक्ष पधार गये है और उपदेश नहीं देते हैं, तब ऐसी प्रार्थना क्यों की जाय ?

उत्तर—इसलिए कि जो मोक्ष पधार गये हैं, उनके गुण हममें भी प्रकट हो। ऐसी प्रार्थना से उनका उपदेश धारण करने की हमारी भावना दृढ़ बनती है और उससे हम मोक्ष के निकट होते हैं।

प्रश्न—महापुरुषो का स्मरण करने से क्या लाभ है ?

उत्तर—(१) महापुरुषो का स्मरण हमारे हृदय को पवित्र बनाता है। (२) वासनाओ की अशाति को दूर कर अखड आत्मशाति का आनद देता है (३) प्रभु का मगलमय पवित्र नाम अतरात्मा मे ज्ञान का प्रकाश फलाता है। (४) मनुष्य जैसी श्रद्धा करता है, जैसा ध्यान, सकल्प और चिंतन करता है, वैसा ही बन जाता है अत महापुरुषो का नाम लेने से अन्य सभी विषयो से हमारा ध्यान हट जायेगा और हमारी बुद्धि महापुरुष विषयक बन जायेगी। (५) महापुरुषो का नाम स्मरण आत्मा से परमात्मा बनने का पथ है, जीवन को सरस, सुदर और सबल बनाने का प्रबल साधन है।

प्रश्न—तीर्थंकर चन्द्रा से भी अधिक निर्मल कैसे ?

उत्तर—चन्द्र मे तो कुछ कलक दिखता है परतु तीर्थंकर भगवान् ने चार घाति रूप कर्म कलक का नाश कर दिया है इसलिये वे चन्द्रो से भी अधिक निर्मल कहे गये हैं।

प्रश्न—तीर्थंकर सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करने वाले कैसे हैं ?

उत्तर—सूर्य सीमित क्षेत्र को प्रकाशित करता है परतु तीर्थंकर भगवान् केवलज्ञान रूप प्रदीप से सम्पूर्ण क्षेत्र—लोक को प्रकाशित करते है अत तीर्थंकर सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करने वाले है।

प्रश्न—समाधि का क्या अर्थ है ?

उत्तर—समाधि का सामान्य अर्थ है—चित्त की एकाग्रता। यह समाधि मनुष्य का अभ्युदय करती है, अंतरात्मा को पवित्र बनाती है एवं सुख-दुःख तथा हर्ष-शोक आदि के प्रसंगों में शांत तथा स्थिर रखती है। सर्वोत्कृष्ट समाधि दशा पर पहुँचने के बाद आत्मा का पतन नहीं होता।

प्रश्न—"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"—ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—प्रभु वीतरागी हैं, वे किसी पर राग और द्वेष नही करते परन्तु प्रभु चरणों में प्रार्थना करना भक्त का कर्त्तव्य है, ऐसा करने से अहंकार का नाश होता है, हृदय में श्रद्धा का बल जागृत होता है और भगवान् के प्रति अपूर्व सम्मान प्रदर्शित होता है। 'सिद्ध, मुझे सिद्धि प्रदान करें'—इसका यही आशय है कि—सिद्ध भगवान् के आलंबन से मुझे सिद्धि प्राप्त हो। जैसे चिंतामणी रत्न से वांछित फल की प्राप्ति होती है उसी प्रकार सिद्धों का ध्यान करने से, गुण स्मरण करने से चित्त शुद्धि द्वारा अभिलषित फल की प्राप्ति होती है।

तीसरा आवश्यक–वंदना

चतुर्विंशतिस्तव नामक दूसरे आवश्यक मे तीर्थंकर देवो की स्तुति की गयी है। देव के बाद दूसरा स्थान गुरु का ही है। तीर्थंकर भगवतो द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश निर्ग्रंथ मुनिराज ही देते हैं। तीसरे वदन आवश्यक मे गुरुदेव को वदन किया जाता है।

मन, वचन, और काया का वह शुभ व्यापार जिसके द्वारा गुरुदेव के प्रति भक्ति और बहुमान प्रकट किया जाता है 'वदन' कहलाता है।

जो साधु द्रव्य और भाव से चारित्र सपन्न है। जिनेश्वर भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलते हुए जिन प्रवचन का उपदेश देते हैं वे ही सुगुरु हैं। आध्यात्मिक साधना मे सदैव रत रहने वाले त्यागी-वैरागी शुद्धाचारी सयमनिष्ठ सुसाधु ही वदनीय पूजनीय होते हैं। ऐसे सुसाधु–गुरु भगवतो को भाव युक्त उपयोग पूर्वक निस्वार्थ भाव से किया हुआ वदन कर्म निर्जरा और अत मे मोक्ष का कारण बनता है।

इसके विपरीत भाव चारित्र से हीन द्रव्यलिंगी–कुसाधु अवदनीय होते हैं। सयमभ्रष्ट वेशधारी कुसाधुओ को वदन करने से कर्म निर्जरा नहीं होती अपितु कर्म बधन का कारण बनता है।

सुगुरुओं को यथाविधि वंदन करने से विनय की प्राप्ति होती है। अहंकार का नाश होता है। वंदनीय मे रहे हुए गुणों के प्रति आदर भाव होता है। तीर्थंकर भगवतों की आज्ञा का पालन होता है। वंदना करने का मूल उद्देश्य ही नम्रता प्राप्त करना है। नम्रता अर्थात् विनय ही जिनशासन का मूल है।

उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २९ में गौतम प्रभु भगवान् महावीर से पूछते है कि—

"वंदएणं भते ! जीवे किं जणयइ ?"

हे भगवन् ! वंदन करने से आत्मा को क्या लाभ होता है ?

उत्तर में भगवान् महावीर स्वामी फरमाते है कि—

"वंदएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ उच्चागोयं निबंधइ सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निवत्तेइ, दाहिणभाव च णं जणयइ।"

—वंदन करने से यह आत्मा नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है, उच्चगोत्र का बंध करता है। सुभग सुस्वर आदि सौभाग्य की प्राप्ति होती है सभी उसकी आज्ञा स्वीकार करते हैं और वह दाक्षिण्य भाव कुशलता एवं सर्वप्रियता को प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति अपने इष्ट देव—तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति करता है गुण-स्मरण करता है वही तीर्थंकर भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलने वाले, जिनवाणी का उपदेश देने वाले गुरुओं

को यथाविधि भक्ति भाव पूवक वदन नमस्कार कर सकता है। अतएव चतुर्विंशतिस्तव के बाद वदना आवश्यक को स्थान दिया गया है।

विधि—दूसरा आवश्यक पूर्ण कर तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर निम्न विधि से दो बार "इच्छामि खमासमणो" का पाठ बोले।

वदन विधि

इच्छामि खमासमणो का पाठ प्रारभ कर जब 'निसीहियाए' शब्द आवे तब दोनो घुटने खडे कर (उकडू आसन से) बैठ। अजलिबद्ध दोनो हाथ मस्तक पर रख कर सिर *झुकाते हुए निम्नानुसार ६ आवतन करें–प्रथम के तीन आवर्त* 'अहो,' 'काय,' 'काय'–इस प्रकार दो-दो अक्षरो का उच्चारण करने से होते है। दोनो हाथ लम्बे कर दसो अगुलियो से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर या चरण स्पश करने की भावना से दसो अगुलियाँ भूमि पर लगा कर मद स्वर से 'अ' अक्षर का उच्चारण करे, फिर दसो अगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए उच्च स्वर से 'हो' अक्षर कहे–ये दोनो अक्षर कहने से पहला आवतन हुआ। इसी प्रकार 'का' और 'य' का उच्चारण करने से दूसरा आवर्तन और 'का' और 'य' का उच्चारण करने से तीसरा आवतन होता है।

तीन आवर्तन करने के पश्चात् दोनो हाथों को जोड कर मस्तक पर लगाते हुए "सफास खमणिज्जो" से लेकर "दिवसो

वइक्कंतो" तक पाठ बोले। तत्पश्चात् "जत्ता भे जवणिज्जं च भे" शब्द निम्नानुसार उच्चारण करते हुए शेष तीन आवर्तन करे—दोनों हाथों को लंबा कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर या चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियां भूमि पर लगा कर 'ज' अक्षर मद स्वर से कहे, फिर अंजलि-बद्ध हाथों को हृदय के पास लाते हुए 'त्ता' अक्षर मध्यम स्वर से और दसों अंगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए 'भे' अक्षर उच्च स्वर से कहे। इस प्रकार "ज–त्ता–भे" इन तीन अक्षरों का उच्चारण करने से चौथा आवर्तन हुआ। इसी विधि से "**ज, व, णि**" ये तीन अक्षर त्रिविध (क्रमशः मंद, मध्यम और उच्च) स्वर से उपरोक्तानुसार कहने से पाँचवाँ आवर्तन और इसी प्रकार "**ज्जं, च, भे**" ये तीन अक्षर त्रिविध स्वर से पूर्ववत् बोलने से छठा आवर्तन होता है।

उपरोक्त छह आवर्तन करने के बाद "खामेमि...वइक्कमं" पाठ बोले और '**आवस्सियाए**' शब्द आने पर खड़े हो कर शेष पाठ ("पडिक्कमामि से अप्पाणं वोसिरामि" तक) पूरा करे।

इसी प्रकार दूसरी बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलते हुए पूर्ववत् छह आवर्तन* कहे, किंतु उसमें "आवस्सि-याए–पडिक्कमामि" ये दस अक्षर न कहें और बैठे-बैठे ही पाठ समाप्त करे। फिर वंदना करके चौथे आवश्यक की आज्ञा लेवें।

---

* प्रथम खमासमणों के छह और दूसरे खमासमणों के भी छह इस तरह पूरी वंदन विधि मे कुल बारह आवर्तन होते हैं।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीही अहो-काय कायसफासं खमणिज्जो मे किलामो, अप्पकिलंताणं बहुसुभेण मे दिवसो वइक्कंतो* जत्ता मे जवणिज्जं च मे खामेमि खमासमणो ! देवसियं वइक्कमं† आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसियाए आसायणाए‡ तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वय-

---

* 'दिवसो वइक्कंतो" के स्थान पर रात्रि प्रतिक्रमण में "राइ वइक्कंता" पाक्षिक प्रतिक्रमण मे "पक्खो वइक्कंतो" चौमासी प्रतिक्रमण में 'चउम्मासो वइक्कंतो" एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरो वइक्कंतो" पाठ बोलना चाहिये।

† 'देवसियं वइक्कमं' के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण मे 'राइयं वइक्कमं' पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियं वइक्कमं' चौमासी प्रतिक्रमण मे 'चउम्मासियं वइक्कमं' और संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियं वइक्कमं' -ऐसा पाठ बोलना चाहिये।

‡ 'देवसियाए आसायणाए' के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण मे 'राइयाए आसायणाए' पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियाए आसायणाए' चौमासी प्रतिक्रमण मे 'चउम्मासियाए आसायणाए' और संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियाए आसायणाए' पाठ बोलना चाहिये।

दुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—**खमासमणो**–हे क्षमाश्रमण ! **वंदिउं**–वंदना करना, **जावणिज्जाए**–शक्ति के अनुसार, **निसीहियाए**–पाप क्रिया से निवृत्त हुए शरीर से, **अणुजाणह**–आज्ञा दीजिये, **मे**–मुझ को, **मिउग्गहं**–परिमित भूमि में प्रवेश करने की, **निसीहि**–पाप क्रिया को रोक कर, **अहो कायं**–आपके चरणों का, **कायसंफासं**–मस्तक और हाथों से स्पर्श करता हूँ, **खमणिज्जो**–क्षमा के योग्य है, **भे**–आपको, **किलामो**–किलामना बाधा, **अप्पकिलंताणं**–ग्लानि वाले, **वहुसुभेणं**–वहुत सुख पूर्वक, **दिवसो**–दिन, **वइक्कंतो**–वीता, **जत्ता**–संयम-यात्रा, **जवणिज्जं**–मन तथा इन्द्रियां पीड़ा रहित है, **खामेमि**–खमाता हूँ, **वइक्कमं**–अपराध को, **आवस्सियाए**–आवश्यक क्रिया मे हुए विपरीत अनुष्ठान से **पडिक्कमामि**–निवृत होता हूँ, प्रतिक्रमण करता हूँ, **तित्तीसन्नयराए**–तेंतीस में से किसी भी, **आसायणाए**–आशातना के द्वारा **जं किंचि**–जिस किसी भी, **मिच्छाए**–मिथ्या भाव से की हुई, **मणदुक्कडाए**–दुष्ट मन से, **वयदुक्कडाए**–दुष्ट वचन से की हुई **कायदुक्कडाए**–शरीर की कुचेष्ठाओं से की हुई, **कोहाए**–क्रोध से, **माणाए**–मान से, **मायाए**–माया से, **लोभाए**–लोभ से की

हुई, सव्वकालियाए–सर्वकाल मे की हुई, सव्वमिच्छोवयाराए–सव मिथ्या आचरणो से पूर्ण, सव्वधम्माइक्कमणाए–सब धर्मों का उल्लघन करने वाली ।

भावार्थ—हे क्षमाश्रमण गुरुदेव ! मै शरीर को पाप क्रिया से निवृत्त कर यथाशक्ति आपको वदना करना चाहता हूँ । अत मुझ को अवग्रह–परिमित भूमि मे प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये । मै पापक्रिया से हट कर अपने मस्तक तथा दोनो हाथो से आपके चरणों को स्पर्श करता हूँ । मेरे चरण-स्पर्श करने से आपको जो कुछ भी बाधा हुई हो, उसके लिये मुझे क्षमा कीजिए । ग्लानि रहित आपका यह दिन बहुत आनद मे बीता ? आपकी सयम-यात्रा निर्बाध है ? आपका शरीर मन तथा इन्द्रिया पीडा से रहित–स्वस्थ है ? हे क्षमाश्रमण ! मुझ से दिन भर मे जो भी अपराध हुआ हो उसके लिये मैं क्षमा याचना करता हूँ। आवश्यक क्रिया करते समय जो भी विपरीत आचरण हुआ हो, उसका मै प्रतिक्रमण करता हूँ । हे क्षमाश्रमण ! जिस किसी भी मिथ्या भाव से, मन से दुष्ट विचार से, दुवचन से, शरीर की दुष्ट चेष्टाओं से क्रोध, मान, माया, लोभ से सब काल मे की हुई सब मिथ्या आचरणो से पूर्ण क्षमादि सभी धर्मों का अतिक्रमण करने वाली ३३ आशातनाओं मे से दिवस सबधी किसी भी आशातना से मुझे जो कोई अतिचार दोष लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, इस प्रकार पाप-व्यापारों से आत्मा को अलग करता हूँ ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न--क्षमाश्रमण का क्या अर्थ है ?

उत्तर--क्षमाश्रमण दो शब्दो से मिल कर बना है।'क्षमा' का अर्थ है-सहन करना। 'श्रमण' का अर्थ है-संसार के कष्टों से खेद प्राप्त करे अथवा जो तप करे, उसे श्रमण कहते है। क्षमा प्रधान श्रमण क्षमाश्रमण कहलाता है अर्थात् क्षमा पूर्वक जो तप करे, वह क्षमाश्रमण है।

प्रश्न--वंदनीय गुरु कौन है ?

उत्तर--जो श्रमण (साधु) क्षमा मार्दव आदि महान् आत्मगुणो से संपन्न हैं और जो प्रभु की आज्ञानुसार अपने धर्म पथ पर दृढता के साथ अग्रसर है, वे ही वंदनीय है।

प्रश्न--अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर--गुरुदेव के चारो ओर चारों दिशाओ मे आत्मप्रमाण अर्थात् शरीर प्रमाण माप वाली भूमि अवग्रह कहलाती है। शरीर प्रमाण साढ़े तीन हाथ का क्षेत्रावग्रह होता है।

प्रश्न--सर्वकाल की आशातना से क्या आशय है ?

उत्तर--इस भव में की हुई, हो रही और होने वाली भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सभी आशातनाओं के लिए 'सव्वकालिआए' (सर्व-तीन काल की आशातना) शब्द प्रयोग किया गया है ?

प्रश्न--सव्वधम्माइक्कमणाए से क्या अर्थ है।

उत्तर--आठ प्रवचन माता के पालन मे अथवा सामान्य

संयम की आराधना के कार्यों रूप सब धर्मानुष्ठान में अति-क्रमण (उल्लंघन) अर्थात् विराधना रूप आशातना के लिये सव्वधम्माइक्कमणाए लिखा गया है।

प्रश्न—इच्छामि खमासमणो के पाठ से की जाने वाली गुरु वंदना को उत्कृष्ट वंदना क्यों कहा गया है?

उत्तर—इच्छामि खमासमण' के पाठ से की जाने वाली वंदना, शब्द और क्रिया दोनों में बढ़कर है। इसलिये इसे उत्कृष्ट वन्दना कहते हैं।

प्रश्न—इच्छामि खमासमणो दो बार क्यों बोला जाता है?

उत्तर—जिस प्रकार दूत राजा को नमस्कार कर कार्य निवेदन करता है और राजा से विदा होते समय फिर नमस्कार करता है, उसी प्रकार शिष्य कार्य को निवेदन करने के लिये अथवा अपराध की क्षमायाचना करने के लिए गुरु को प्रथम वंदना करता है, खमासमणो देता है और जब गुरु महाराज क्षमा प्रदान कर देते हैं तब शिष्य वंदना करके दूसरा खमा-समणा लेकर वापिस लौट जाता है। द्वादशावर्त वंदना की पूरी विधि दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने से ही सम्पन्न है। अतः पूर्वाचार्यों ने दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने की विधि बतलायी है।

प्रश्न—उत्कृष्ट वंदना क्या है? इसकी विधि कौन से आगम सूत्र में बतायी गयी है?

उत्तर—द्वादशावर्त वंदन उत्कृष्ट वंदना है। यह इच्छामि

खमासमणो के पाठ से किया जाता है। समवायांग सूत्र के वारहवें समवाय मे पाठ है—

दुवालसावत्ते किइकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—

दुओणयं जहाजायं किइकम्मं वारसावयं।

चउसिरं तिगुत्तं च दुपवेसं एगणिक्खमणं॥

—कृतिकर्म-वंदन द्वादश आवर्त्त वाला कहा है। इन वारह आवर्तो मे अवश्य करने योग्य पच्चीस विधियाँ × होती है, वे ये हैं—१ यथाजात मुद्रा २-३ दो सिर नमन ४-१५ वारह आवर्त्तन १६-१९ चार सिर २०-२२ तीन गुप्तियाँ २३-२४ दो प्रवेश और २५ एक निष्क्रमण।

उपरोक्त विधि दो वार इच्छामि खमासमणो का पाठ वोलने से ही संभव है।

× आवश्यक निर्युक्ति गाथा १२०२ मे भी उत्कृष्ट वंदन की विधि इसी प्रकार बतलायी है।
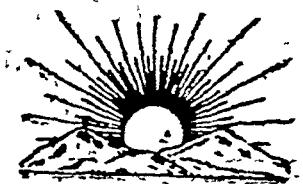
चौथा आवश्यक-प्रतिक्रमण

छह आवश्यको मे प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक है, फिर भी इसका सर्वाधिक महत्त्व होने के कारण 'आवश्यक सूत्र' को ही 'प्रतिक्रमण-सूत्र' कहा जाता है। वसे इसका पाठ भी सब से बडा है और जब तक प्रतिक्रमण का पाठ पूरा नही किया जाता, आवश्यक पूर्ण नही होता है।

वदना आवश्यक के पश्चात् प्रतिक्रमण को रखने का आशय यह है कि जो राग द्वेष रहित समभावो से गुरुदेवो की स्तुति करने वाले हैं वे ही गुरुदेव की साक्षी मे अपने पापो की आलोचना कर सकते है, प्रतिक्रमण कर सकते हैं। जो गुरुदेव को वदन ही नही करेगा, वह किस प्रकार गुरुदेव के प्रति बहुमान रखेगा और अपना हृदय स्पष्टतया खोल कर कृत पापो की आलोचना करेगा? जो पाप मन से, वचन से और काया से स्वय किये जाते है दूसरो से कराये जाते हैं और दूसरो के द्वारा किए हुए पापो का अनुमोदन किया जाता है इन सब पापो की निवृत्ति के लिए कृत पापो की आलोचना करना, निन्दा करना प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण करने से, आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप मे आती है।

व्रत मे लगे हुए दोषो की सरल भावो से प्रतिक्रमण द्वारा शुद्धि करना और भविष्य मे उन दोषो का सेवन न करने के

लिए सतत जागरूक रहना ही प्रतिक्रमण का वास्तविक उद्देश्य है। प्रतिक्रमण का लाभ बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र अ. २९ मे पृच्छा की है कि—

"पडिक्कमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ" ?

—हे भगवन् ! प्रतिक्रमण करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

"पडिक्कमणेणं वयच्छिद्दाइं पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे णिरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ"।

—प्रतिक्रमण करने वाला व्रतो में बने हुए छिद्रों को बंद करता है फिर व्रतों के दोषों से निवृत्त बना हुआ शुद्ध व्रतधारी जीव आश्रवो को रोक कर तथा शबलादि दोषो से रहित शुद्ध संयम वाला होकर आठ प्रवचन माताओ में सावधान होता है और संयम मे तल्लीन रहता हुआ समाधिपूर्वक एवं अपनी इन्द्रियो को असन्मार्ग से हटा कर संयम मार्ग मे विचरण करता है अर्थात् आत्मा संयम के साथ एकमेक हो जाता है। जो इन्द्रियां वाह्योन्मुखी है वे अंतर्मुखी हो जातीहै। इन्द्रियां मन में लीन हो जाती है और मन आत्मा में रम जाता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण—जो वापस लौटने की प्रक्रिया से चालू हुआ था, वह धीरे-धीरे 'आत्म स्वरूप स्थिति' में पहुँच जाता है। यही है प्रतिकमण का पूर्ण फल ! प्रतिक्रमण की यही है उपलब्धि।

विधि—तीसरे आवश्यक की समाप्ति पर तिक्खुत्ता के पाठ से तीन बार वंदना करके चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा ले।

'श्रावक सूत्र' करने वाले खड़े होकर ९९ अतिचार की पाटिया—(आगमे तिविहे दंसण समकित बारह स्थूल, छोटी संलेखना) अठारह पाप, इच्छामि ठामि—जिनका काउस्सग्ग में चिंतन किया था उन्हें प्रकट कहें। फिर 'तस्स सव्वस्स' का पाठ बोल कर श्रावक सूत्र की आज्ञा ले और दाहिना घुटना खड़ा रख कर बैठे। फिर एक नवकार, करेमि भंते, चत्तारि मंगल, इच्छामि ठामि, इच्छाकारेण, आगमे तिविहे, दंसण समकित और बारह व्रतों के पाठ कहे। तत्पश्चात् पालथी आसन से बैठ कर बड़ी संलेखना अठारह पापस्थान का पाठ कहे। फिर खड़े हो कर तस्स धम्मस्स का पाठ कह कर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ कहे।

'श्रमण सूत्र' करने वाले खड़े हो कर आगमे तिविहे, दंसण समकित और बारह व्रतों के सम्पूर्ण पाठ कहे फिर पालथी आसन से बैठ कर बड़ी संलेखना, अठारह पाप स्थान पच्चीस मिथ्यात्व एवं चौदह सम्मूर्छिम मनुष्यों के उत्पत्ति के स्थान का पाठ बोलने के बाद बायां घुटना पृथ्वी पर रख कर और दायां घुटना ऊँचा रख कर दोनों हाथ जोड़ कर नवकार मंत्र, करेमि भंते, चत्तारि मंगल, इच्छामि ठामि इच्छाकारेण के पाठ कहे। फिर निद्रा दोष निवृत्ति

(पडिक्कमामि पगामसिज्जाए), भिक्षा दोप निवृत्ति (पडिक्कमामि गोयरग्गचरियाए) स्वाध्याय प्रतिलेखन-दोष निवृत्ति (चउकाल सज्झाए) और तेतीस बोल का पाठ कहे। तत्पश्चात् दोनों घुटने खड़े रख कर दोनो हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर निर्ग्रंथ-प्रवचन (नमो चउवीसाए) का पाठ बोलते हुए 'अब्भुट्ठिओमि' शब्द के यहां से खड़े हो कर पूरा पाठ बोले। फिर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ कहे।

दो वार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलने के पश्चात् दोनो घुटने नमा कर घुटनों के ऊपर दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक को नीचा नमा कर एक नवकार मंत्र कह कर **पांच पदों की वंदना** कहे। फिर नीचे बैठ कर अनत **चौबीसी आयरिय उवज्झाए, ढाई द्वीप, चौरासी लाख जीवयोनि क्षमापना** का पाठ व अठारह पापस्थान कह कर चौथा आवश्यक पूरा करे।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय दुच्चिंतिय दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि।

शब्दार्थ—तस्स–उस, सव्वस्स–सर्व, देवसियस्य–दिवस संबंधी, अइयारस्स–अतिचार की, दुब्भासिय–दुर्वचन,

दुचिंतिय-दुष्ट विचार, दुच्चिट्ठियस्स-दुष्ट व्यवहार की, आलोयतो-आलोचना करता हुआ।

भावार्थ—मन से बुरे विचार उत्पन्न करके, वचन से दुर्वचन बोल कर तथा काया द्वारा दुष्ट व्यवहार (प्रवृत्ति) करके दिन-भर मे मैंने जो अतिचार किये हैं उनकी मे आलोचना करता हुआ पापो से निवृत्त होता हूँ।

चत्तारि मंगल का पाठ

चत्तारि मगल, अरिहता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल, केवलि पण्णत्तो धम्मो मगल। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरण पवज्जामि अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलि-पण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि।

(अरिहतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली प्ररूपित धर्म का शरणा)

चार शरणा दुःख हरणा, और न शरणा कोय।
जो भवी प्राणी आदरे तो अक्षय अमर पद होय॥

कठिन शब्दार्थ—चत्तारि-चार, अरिहता-अरिहत,

मंगलं–मंगल, **सिद्धा**–सिद्ध, **साहू**–साधु, **केवलिपण्णत्तो**–केवली प्ररूपित, **लोगुत्तमा**–लोकोत्तम, **सरणं**–शरण को, **पवज्जामि**–ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—चार मंगल हैं–अरिहंत भगवान् मंगल है, सिद्ध भगवान् मंगल है, साधु-महाराज मंगल है, सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म मंगल है। चार लोक–संसार में उत्तम-श्रेष्ठ है–अरिहंत भगवान् लोक मे उत्तम है, सिद्ध भगवान् लोक में उत्तम हैं, साधु महाराज लोक में उत्तम हैं, केवली प्ररूपित धर्म लोक में उत्तम है। मै चार की शरण स्वीकार करता हूँ–अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूँ, सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ, साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ; केवली–सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे हित की प्राप्ति हो, जो आत्मा को संसार से अलग करता हो, जिससे आत्मा शोभायमान हो, जिससे आनंद तथा हर्ष प्राप्त होता हो एवं जिसके द्वारा आत्मा पूज्य बनती हो, वह मंगल है।

प्रश्न—केवली प्ररूपित धर्म से क्या आशय है ?

उत्तर—केवलज्ञानी सर्वज्ञों द्वारा कहा हुआ धर्म केवली प्ररूपित धर्म है। जो केवलज्ञानी नही है वे अनाप्त है और अनाप्त का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

अतएव धर्म के प्रवक्ता सर्वज्ञ-साक्षाद् द्रष्टा होने चाहिये। जब ज्ञानावरणीय कर्म का पूर्णतया नाश एव क्षय हो जाता है। तब आत्मा मे केवलज्ञान प्रकट होता है। केवली मे सम्पूर्ण पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट जानने का पूर्ण सामर्थ्य होता है अत ऐसे केवली का कहा हुआ धर्म ही सच्चा धर्म है। इसीलिए धर्म के लिए 'केवलिपण्णत्तो' विशेषण दिया गया है।

प्रश्न—उत्तम किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्तम का अर्थ है—ऊँचा होना, विशेष ऊँचा होना, सबसे ऊँचा होना। जिसका उत्थान पुन पतन की ओर न जाय और न अपने स्नेही को पतन की ओर ले जाय वही वस्तुत उत्तम होना है। अनतकाल से भटकती हुई भव्य आत्माओ को उत्थान के पथ पर ले जाने वाले—अरिहत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ही उत्तम है।

प्रश्न—अरिहत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरि—आत्म शत्रु को (चार घाती कर्मों को) हत-नाश करने वाले को 'अरिहत' कहते हैं।

प्रश्न—सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन्होंने आठो कर्मो का क्षय कर आत्म कल्याण साध लिया हो, उन्हे सिद्ध कहते हैं।

प्रश्न—साधु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पाच महाव्रत, पाच समिति और तीन गुप्ति का प्रभु आज्ञानुसार पालन करते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

दंसण समकित का पाठ‡

दंसण सम्मत्त परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वावि। वावण्णकुदंसणवज्जणा य, सम्मत्त सद्दहणा। एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोऊँ——संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो, इन पांच अतिचारों में से जो कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

१ अहिंसा अणुव्रत

पहला अणुव्रत थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें सगे संबंधी स्वशरीर के लिए पीडाकारी और सापराधी को छोड़ निरपराधी को आकुट्टी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ऐसे पहले स्थूल

‡ इस पाठ का अर्थ, भावार्थ, प्रश्नोत्तर पृष्ठ ३७–३८ पर देखें।

प्राणातिपात वेरमण व्रत के पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोऊं-वधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयाओ कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

कठिन शब्दार्थ—अणुव्रत-महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत थूलाओ-स्थूल, पाणाइवायाओ-प्राणातिपात से, वेरमणं-निवृत्त होना, बेइदिय-बेइन्द्रिय, तेइदिय-तेइन्द्रिय, चउरिदिय-चउरिन्द्रिय, पचिदिय-पचेन्द्रिय, पच्चक्खाण-त्याग, दुविह-दो करण से, तिविहेण-तीन योग से, न करेमि-नही करता हूँ, न कारवेमि-नही करवाता हूँ, मणसा-मन से, वयसा-वचन से, कायसा-काया से, पेयाला-प्रधान, वधे-रोष वश गाढा वधन वाधा हो, वहे-गाढा घाव घाला हो, छविच्छेए-अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, अइभारे-अधिक भार भरा हो, भत्तपाणविच्छेए-भात पानी का विच्छेद किया हो।

भावार्थ—मैं स्वसबधी-शरीर मे पीडाकारी तथा अपराधी जीवो को छोड कर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय त्रस जीवो की हिंसा सकल्प करके मन, वचन और काया से न करूंगा और न करवाऊंगा। मैने किसी जीव को रोष वश गाढ़ वधन से बाधा हो, चाबुक लाठी आदि से मारा हो, पीटा हो, किसी जीव के चर्म का छेदन किया हो, अधिक भार भरा हो, भात पानी का विच्छेद किया हो अथवा खाने पीने मे रुकावट डाली हो तो मेरे ये सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—प्राणातिपात किसे कहते है ?

उत्तर—प्रमादपूर्वक सूक्ष्म और वादर, त्रस और स्थावर रूप समस्त जीवों के दश प्राणों (पांच इन्द्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्‌वास और आयु) मे से किसी भी प्राण का अतिपात (नाश) करना प्राणातिपात है।

प्रश्न—सूक्ष्म प्राणातिपात किसे कहते है ?

उत्तर—स्थावर जीवो की हिंसा करना, सूक्ष्म प्राणातिपात है।

प्रश्न—प्रथम अहिंसा अणुव्रत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—स्व शरीर में पीड़ाकारी, अपराधी तथा सापेक्ष निरपराधी के सिवाय शेष बेइन्द्रिय आदि त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा का दो करण तीन योग से त्याग करना, स्थूल प्राणातिपात त्याग रूप प्रथम अहिंसा अणुव्रत है।

प्रश्न—त्रस किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव हलन चलन करे, छाया से धूप में आवे और धूप से छाया में जावे, उसे 'त्रस' कहते हैं। इसके चार भेद हैं–१ बेइन्द्रिय २ तेइन्द्रिय २ चउरिन्द्रिय और ४ पंचेन्द्रिय।

प्रश्न—बेइन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक काया और दूसरा मुख, ये दो इन्द्रियां जिसके हों, उसे बेइन्द्रिय कहते है। जैसे–शंख, कोडी, सीप, लट, अलसिया, कृमि आदि।

प्रश्न—तेइन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—१ काया २ मुख और ३ नाक, ये तीन इन्द्रियाँ जिसके हो, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं जैसे जू, लीख, चाचड, खटमल आदि ।

प्रश्न—चउरिन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—१ काया २ मुख ३ नाक ४ आख, ये चार इन्द्रियाँ जिसके हो, उसे चउरिन्द्रिय कहते हैं। जैसे मक्खी, डास, मच्छर आदि ।

प्रश्न—पचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—काया, मुख, नाक, आख और कान ये पाच इन्द्रिया जिसके हो, उसे पचेन्द्रिय कहते हैं। जैसे–मनुष्य, देव, नारक और गाय, भैस आदि ।

प्रश्न—जान के पहचान के हिसा करना किसे कहते हैं ?

उत्तर—'जहा पर या जिस पर मैं प्रहार कर रहा हूँ वहा या वह त्रस जीव है।'–यह जानते हुए हिसा करना, जान के पहचान हिसा करना कहलाता है ।

प्रश्न—सकल्प करके हिसा करना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जैसे "मैं इस मनुष्य को मारू, इन सिंह, हिरण आदि का शिकार करू, सप, चूहे, मच्छर आदि का नाश करू, अडे, मछली आदि खाऊँ" ऐसा विचार करके उनकी हिसा करना सकल्पी हिसा है ।

प्रश्न—श्रावक सकल्पी हिसा का ही त्याग क्यो करता है ?

उत्तर—क्योंकि अन्य आरभ करते हुए श्रावक की मारने की बुद्धि न रहते हुए भी उससे त्रस जीवो की हिसा हो जाती है

जैसे पृथ्वीकाय खोदते हुए भूमिगत त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है वाहन पर चलते हुए वाहन से कीड़ी आदि जीव मर जाते है। ऐसी आरंभी त्रसहिसा का श्रावक त्याग करने में समर्थ नही होता।

प्रश्न--शरीर के लिए पीड़ाकारी का उदाहरण दीजिये ?

उत्तर—कृमि, नारू (वाला) आदि।

प्रश्न—सापराधी किसे कहते हैं ?

उत्तर—आक्रमणकारी शत्रु, सिह, सर्प आदि को, धनापहारी चोर, डाकू आदि को, शील लूटने वाले जार आदि को या उचित और आवश्यक राष्ट्रनीति, राजनीति, समाजनीति आदि का भंग करने वाले को सापराधी कहते हैं।

प्रश्न--श्रावक, सापराधी की हिंसा क्यों नही छोड़ देता ?

उत्तर—संसार में रहने के कारण उस पर आश्रितों की रक्षा आदि का भार रहता है अतः वह सापराधी हिंसा नही छोड़ पाता है।

प्रश्न—निरपराध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसने किसी का अपराध नही किया हो उसे निरपराध कहते है जैसे आक्रमण नहीं करने वाले शांति प्रेमी मनुष्य, धन शीलादि को नही लूटने वाले साहूकार सुशील आदि, अपने मार्ग से जाते हुए सिंह सर्प आदि और किसी को कष्ट न पहुँचाने वाले गाय, हरिण, तीतर, मछली अण्डे आदि निरपराध हैं।

प्रश्न--आकुट्टी से मारना किसे कहते हैं ?

उत्तर—कषायवश निर्दयतापूर्वक प्राण से रहित करने—मारने की बुद्धि से मारना, आकुट्टी की बुद्धि से मारना कहलाता है।

प्रश्न—जीव अपने कर्मानुसार मरते है और दुख पाते है फिर मारने वाले को पाप क्यो लगता है ?

उत्तर—मारने की दुष्ट भावना और मारने की दुष्ट प्रवृत्ति से ही मारने वाले को पाप लगता है।

प्रश्न—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—व्रत की प्रतिज्ञा के विरुद्ध व्रत का उल्लघन करने के सकल्प को अतिक्रम, व्रत का उल्लघन करने के लिए कायिक व्यापार प्रारम्भ करना व्यतिक्रम, व्रत को भग करने की सामग्री इकट्ठी करना, व्रत भग के निकट पहुच जाना अतिचार और व्रत का सर्वथा भग करना अनाचार कहलाता है।

प्रश्न—अहिंसा अणुव्रत का पालन कितने करण और कितने योग से होता है ?

उत्तर—यद्यपि अहिंसा अणुव्रत दो करण तीन योग से लिया जाता है पर इसका तीन करण तीन योग से पालन करने का विवेक रखना चाहिये अर्थात् कोई निरपराध त्रस जीव को सकल्प पूर्वक मारे तो उसका मन, वचन, काया से अनुमोदन नही करना चाहिये। इसी प्रकार आगे के व्रतो को भी तीन करण तीन योग से पालन करने का ध्यान रखना चाहिये।

प्रश्न—गाढ़ावंधन किसे कहते है ?

उत्तर—ऐसे मजबूत वंधन से वांधना कि जिससे गति संचार, शरीर संचार और रक्त संचार मे वाधा पड़े, गाढ़ा वंधन कहलाता है ।

प्रश्न—'**बहे**' के अन्य प्रकार वताइये ?

उत्तर—घूसा, लात, चावुक, आर आदि से मर्म स्थान आदि पर ऐसा प्रहार करना-ताडन करना—मारना कि चमड़ी उधड़ जाय, रक्त वहने लगे या निशान पड़ जाय **वहे** अतिचार है ।

प्रश्न—'छविच्छेद' अतिचार कव लगता है ?

उत्तर—रोगादि कारणों के न होते हुए अंगभंग करने, चमड़ी का छेदन करने, डाम आदि देने, अवयव आदि काटने पर 'छविच्छेद' अतिचार लगता है ।

प्रश्न—अतिभार किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पशु जितने समय तक जितना भार ढो सकता हो, उससे भी अधिक समय तक उस पर भार(वोझ)लादना या जो मनुष्य जितने समय तक जितना कार्य कर सकता हो, उससे भी अधिक समय तक उससे कार्य कराना अतिभार अतिचार है ।

प्रश्न—'भत्तपाण विच्छेद' अतिचार कव लगता है ?

उत्तर—भोजन पानी के समय भोजन-पानी नहीं करने देने—अंतराय देने से 'भत्तपाण विच्छेद' अतिचार लगता है ।

२ सत्य अणुव्रत

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालीए, गोवालीए भोमालीए णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिज्जे (कूडी साख) इत्यादि मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एव दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पच पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा त जहा ते आलोऊँ—सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमतभेए† मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ—मुसावायाओ—मृषावाद से, कन्नालीए—कन्यालीक-कन्या सबधी झूठ, गोवालीए—गाय सबधी झूठ, भोमालीए—भूमि सबधी झूठ, णासावहारो—धरोहर दबाने के लिए झूठ, थापणमोसो—धरोहर सबधी झूठ, कूडसक्खिज्जे—कूडी साख-झूठी साक्षी, सहसब्भक्खाणे—सहसाकार से किसी के प्रति कूडा आल (झूठा दोष) दिया हो, रहस्सब्भक्खाणे—एकान्त मे गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियो पर झूठा आरोप लगाया हो, सदारमतभेए (समत्तारमतभेए)—स्त्री-पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो मोसोवएसे—मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, कूडलेहकरणे—कूडा (झूठा) लेख लिखा हो।

† स्त्रियो को "समत्तारमतभेए" पाठ बोलना चाहिये।

भावार्थ—मैं यावज्जीवन मन, वचन, काया से स्थूल झूठ स्वयं नही बोलूगा और न दूसरों से बोलवाऊँगा। कन्या वर के संबध में, गाय भैंस आदि पशुओं के विषय में तथा भूमि के विषय मे कभी असत्य नही बोलूगा। किसी की रखी हुई धरोहर को नही दबाऊँगा और न धरोहर को कम ज्यादा बताऊँगा तथा किसी की झूठी गवाही भी नही दूगा। यदि मैने किसी पर झूठा आरोप लगाया हो, रहस्य बात प्रकट की हो, स्त्री पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो, झूठा उपदेश दिया हो और झूठा लेख लिखा हो तो मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—झूठ बोलने के कितने कारण बताये हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो ने झूठ बोलने के चार कारण बताये है—१ क्रोध, २ लोभ, ३ भय और ४ हास्य, इन चार मे से किसी भी कारण के अधीन होकर जीव असत्य बोलने के लिये प्रेरित होता है।

प्रश्न—मृषावाद कितने प्रकार का है ?

उत्तर—मृषावाद दो प्रकार का है—१ सूक्ष्म और २ स्थूल। हंसी मजाक मे या आमोद-प्रमोद में मामूली-सा झूठ बोलना या झूठ बोलने का अनुमोदन करना सूक्ष्म झूठ है। स्थूल वस्तु मे गलत परिणामो से असत्य बोलना स्थूल मृषावाद है।

प्रश्न—क्या सूक्ष्म मृषावाद से श्रावक का व्रत भंग होता है ?

उत्तर—सूक्ष्म मृषावाद से पाप तो लगता है किन्तु व्रत

भग नही होता क्योकि श्रावक के स्थूल मृषावाद का ही पच्चक्खाण है ।

प्रश्न---'कन्यालीक' से क्या आशय है ?

उत्तर---कन्यालीक अर्थात कन्या सबधी झूठ बोलना । लडके-लडकियो के सबध (सगाई) बाधने तोडने के लिये, किसी की छवि बिगाडने अथवा कोई सकट मे पड जाय ऐसा झूठ कन्यालीक है । कन्या शब्द उपलक्षण रूप है क्योकि मानव समाज म वर वधू का सबध महत्त्वपूर्ण है उसमे सबधित मृषावाद का प्रतीक रूप मे ग्रहण करके समस्त रागात्मक सबधो को बनाने-बिगाडने वाले असत्य या सपूर्ण मानव जाति सबधी झूठ का 'कन्यालीक' मे ग्रहण कर लिया गया है ।

प्रश्न-'गवालीक' क्या है ?

उत्तर---गवालीक-गौ सबधी झूठ । गौ शब्द मे समस्त चतुष्पद, जिनसे मानव जीवन का व्यवहार चलता है-गृहीत हो जाते हैं । गाय, भैस, बकरी आदि पशुओ के लेन देन मे सबधित झूठ, मृषा आचरण आदि 'गवालीक' है ।

प्रश्न---'भूम्यलीक' का क्या अर्थ है ?

उत्तर---भूम्यलीक अर्थात् भूमि आदि के विषय मे बोले जाने वाले झूठ । भूमि, भूमि से उत्पन्न वस्तुएँ अथवा समस्त 'अपद' पदार्थ 'भूमि' शब्द से गृहीत है । जीवनयापन की समस्त वस्तुओं के क्रय विक्रय आदि से सबधित झूठ भूम्यलीक है ।

प्रश्न---थापणमोसो-न्यासापहार एक प्रकार से चोरी है फिर इसका मृषावाद मे समावेश क्यो किया गया ?

उत्तर—न्यासापहार–किसी की धरोहर दवाना एक प्रकार से चोरी है परन्तु इसमे वाणी के व्यवहार की प्रधानता होने के कारण इसे मृषावाद में परिगणित किया गया है।

प्रश्न—रक्षा के लिए झूठी साक्षी देना या नहीं ?

उत्तर—रक्षा की भावना उत्तम है पर रक्षा के लिए भी सापराधी की झूठी साक्षी नही देना चाहिये। कदाचित् इससे अन्य निरपराधी की मृत्यु भी हो सकती है। निरपराधी को बचाने के लिए भी कूट साक्षी देना अतिचार है इससे भविष्य के लिए साक्षीत्व का विश्वास उठ जाता है। उसे सत्य से बचा लेने में समर्थ न होने से यदि कूट साक्षी दी हो तो उस अतिचार का भी तत्काल प्रायश्चित्त करना चाहिये।

प्रश्न—सहसब्भक्खाणे अतिचार क्या है ?

उत्तर—विना सोचे समझे जैसा भी मन में आया वैसा दोषारोपण कर देना–सहसाभ्याख्यान है। जैसे–क्रोधादि कषाय के आवेश मे आकर विना विचारे किसी पर हत्या, झूठ, चोरी जारी आदि का आरोप लगाना तथा संदेह होने पर भी कुछ भी प्रमाण मिले विना सुनी सुनाई बात पर या शत्रुता निकालने के लिए या अपने पर आये आरोप को टालने के लिए दूसरों पर आरोप लगाना भी 'सहसब्भक्खाणे' है।

प्रश्न—'रहस्सब्भक्खाणे' की व्याख्या कीजिए ?

उत्तर—किसी को एकान्त में बैठे या चर्चा करते हुए–रहस्य-मंत्रणा करते हुए देख कर राजद्रोह आदि का दोषा-

रोपण करना अथवा किसी की गुप्त बात को विकृत रूप मे प्रकट करना करना रहस्याभ्याख्यान है।

प्रश्न—'सदारमतभेए' अतिचार कैसे लगता है ?

उत्तर—अपनी पत्नी (या अपने पति) का मर्म प्रकाशित करना सदारमतभेए अतिचार है। स्त्री, मित्र जाति या राष्ट्र आदि किसी की भी कोई भी लज्जनीय या गोपनीय बात को अन्य के समक्ष प्रकट करने से यह अतिचार लगता है।

प्रश्न—सच्ची बात प्रकट करना अतिचार कैसे ?

उत्तर—अपनी पत्नी का मर्म प्रकाशित करना, सत्य होते हुए भी असत्य दोषारोपण जैसा दुष्फल पैदा करता है। गुप्त बात प्रकट होने, मर्म प्रकाशित होने से स्त्री आदि का विश्वासघात होता है वह लज्जित होकर मर सकती है या एक राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र का आक्रमण आदि हो सकता है अत विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है। कषाय की तीव्रता या प्रमाद के बिना मर्म प्रकाशन नही हो सकता इसलिये यह दूसरे व्रत का अतिचार है।

प्रश्न—झूठा (मृषा) उपदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसा की वृद्धि हो—ऐसे महारंभ जनक कार्यों की प्रेरणा देना—उन्हें करने की विधि बतलाना आदि मृषोपदेश हैं।

प्रश्न—कूट-लेख-करण से क्या समझना चाहिये ?

उत्तर—झूठे दस्तावेज बनाना, कूट मुद्राएँ—बनावटी सिक्के

या मोहरे बनाना, झूठे हस्ताक्षर करना, राग द्वेष और वासना की वृद्धि करने वाली कल्पित कहानियां गढ़ना आदि कूट-लेख-करण है।

प्रश्न---यदि किसी से राजकीय-सामाजिक-व्यापारिक साहित्यिक झूठ न छूटे, तो क्या वह व्रत ग्रहण नहीं कर सकता ?

उत्तर---यथासंभव आत्मबल बढ़ाकर सभी बड़े झूठ का त्याग कर यह व्रत लेना चाहिये। यदि किसी से विशेष आत्म-बल के अभाव मे ऐसा न हो सके तो जितना झूठ त्याग सके उतना ही सही परन्तु व्रत अवश्य लें।

३ अचौर्य अणुव्रत

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं खात खनकर, गांठ खोल कर, ताले पर कूंची लगा कर मार्ग में चलते को लूट कर पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण सगे संबंधी, व्यापार संबंधी तथा पड़ी हुई निर्भ्रमी वस्तु के उपरांत अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोऊं—तेनाहडे तक्करप्पओगे विरुद्ध-

रज्जाइक्कमे कूडतुल्लकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ--अदिण्णादाणाओ-अदत्तादान (चोरी) से, धणियाती-किसी के अधिकार की, निभ्रमी-शका रहित, तेनाहडे-चोर की चुराई वस्तु ली हो, तक्करप्पओगे-चोर को सहायता दी हो, विरुद्धरज्जाइक्कमे-राज्य विरुद्ध काम किया हो, कूडतुल्लकूडमाणे-कूडा (खोटा) तोल कूडा माप किया हो, तप्पडिरूवगववहारे-वस्तु मे भेल सभेल की हो।

भावार्थ—मै किसी के मकान मे खात लगा कर अर्थात् भीत फोड कर, गाठ खोलकर, ताले पर कूची लगा कर अथवा ताला तोड कर किसी की वस्तु नही लूगा। माग मे चलते हुए किसी को नही लूटूगा। मार्ग मे पडी हुई किसी मोटी वस्तु का स्वामी--जानते हुए उसे नही लूगा इत्यादि रूप से सगे सबधी, व्यापार सबधी तथा पडी हुई शका रहित वस्तु के उपरात स्थूल चोरी मन, वचन, काया से नही करूगा और न कराऊगा। यदि मैने चोरी की वस्तु ली हो, चोर को सहायता दी हो, राज्य विरुद्ध कार्य किया हो, झूठा तोल या माप किया हो, वस्तु मे भेल-सभेल (मिलावट) की हो उत्तम वस्तु दिखा कर खराब वस्तु दी हो तो मै इन बुरे कामो की आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—अदत्तादान किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी भी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के विना लेना अदत्तादान-चोरी है।

प्रश्न—वड़ी चोरी किसे कहते हैं ?

उत्तर—'राजदण्डे, लोक भण्डे' यानी ऐसी चोरी जिससे राज दण्ड मिले और समाज या लोक में निंदा हो, वड़ी चोरी कहलाती है।

प्रश्न—तीसरे व्रत में कितनी प्रकार की चोरी का त्याग होता है ?

उत्तर—इस व्रत में मुख्य पाँच प्रकार की वड़ी चोरी का त्याग होता है। पांच प्रकार की चोरी इस प्रकार है—१ सेंध मारना, २ गाठ खोलना अर्थात् जेब काटना, पॉकिट उड़ा लेना आदि ३ ताले तोड़ना-खोलना अर्थात् सुरक्षित धन को हर लेना ४ राहगीरों को लूटना या शस्त्र आदि से, वल प्रयोग से धन छीन लेना और ५ किसी की गिरी हुई, भूल से छूटी हुई वस्तु को उठा लेना-रख लेना।

प्रश्न—लोक निन्द्य चोरी क्या है ? इसके त्याग में कितने आगार कहे है ?

उत्तर—जिस अदत्त वस्तु को लेने से समाज में निंदा हो —लोक में चोरी का भ्रम पैदा हो, वह लोक निन्द्य चोरी है। लोक निन्द्य अदत्त के त्याग में दो आगार है—

१ सगे संबंधी—कुटुम्वियों की वस्तुएं वस्त्र आभूषण

आदि उन्हे पूछने का अवकाश न होने पर सुरक्षित रूप मे रख लेना या काम मे लेने योग्य वस्तु को काम मे ले लेना।

२ व्यापार सबधी—व्यापार से सबधित पदार्थ कलम, पेन्सिल , कागज आदि तुच्छ वस्तुए विना पूछे ले लेना।

प्रश्न—तेनाहडे (स्तेनाहृत) की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर—चोर के द्वारा लायी गयी वस्तुओं को रख लेना, उसके द्वारा चुराये गये पदार्थों को खरीद लेना, उनका सरक्षण करना आदि तेनाहडे (स्तेनाहत) है।

प्रश्न—तक्करप्पओगे (तस्कर प्रयोग) अतिचार क्या है ?

उत्तर—चोर को रसद देना, किसी के धन आदि का भेद वताना, चोरी का स केत करना, उसकी चुराई हुई वस्तुओ को लेने का आश्वासन देना आदि तस्कर प्रयोग है।

प्रश्न—राज्य विरुद्ध काम किसे कहते हैं ?

उत्तर—राज्य (शासन) के विरुद्ध कार्य करना जैसे निषिद्ध वस्तुएँ बेचना-खरीदना, निषिद्ध राज्यो मे बेचना, खरीदना, कर नही देना, विरोधी राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना आदि।

प्रश्न—कूट तोल-कूट माप किसे कहते हैं ?

उत्तर—देने और लेने के अलग-अलग तोल माप रखना या देते समय कम तोल कर देना, कम माप कर देना, कम गिन कर देना और लेते समय अधिक तोल कर, अधिक माप कर, अधिक गिन कर लेने से कूट तोल कूट-माप अतिचार लगता है।

प्रश्न—'तप्पडिरूवगववहारे' की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर—अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिला कर बेचना, उत्तम वस्तु दिखा कर निकृष्ट वस्तु देना, अल्प मूल्य वाली या बनावटी वस्तु को बहुमूल्य जैसी और वास्तविक जैसी बना कर बेचना, या ऊपर लेबल अच्छा लगा कर भीतर खराब-खोटी वस्तु रख कर बेचना 'तप्पडिरूवगववहारे' अतिचार है।

४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं सदारसंतोसिए (स्त्रियों के लिए 'सभत्तार संतोसिए') अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी संबंधी दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तथा मनुष्य तिर्यंच संबंधी एगविहं एगविहेणं न करेमि कायसा एवं चौथा स्थूल मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोऊँ—इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगकीड़ा, परविवाहकरणे, कामभोगातिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारों कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—मेहुणाओ—मैथुन से, सदारसंतोसिए—

अपनी पत्नी मे सतुष्ट होकर, अवसेस–अन्य शेष, मेहुणविहं–मैथुन सेवन का, एगविह एगविहेण–एक करण एक योग से, इत्तरियपरिग्गहियागमणे–इत्वरपरिगृहीता से गमन किया हो, अपरिग्गहियागमणे–अपरिगृहीता से गमन किया हो, अनगक्रीडा–अनगक्रीडा की हो, परविवाहकरणे–पराये का विवाह नाता कराया हो, कामभोगतिव्वाभिलासे–काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो।

भावार्थ—मै यावज्जीवन अपनी विवाहिता स्त्री मे ही सतोष रख कर शेष सब प्रकार के मैथुन सेवन का त्याग करता हूँ अर्थात देव देवी सबधी मैथुन का सेवन मन, वचन, काया से न करूगा और न कराऊगा तथा मनुष्य और तिर्यंच सबधी मैथुन सेवन काया से न करूगा। यदि मैने इत्वरिकपरिगृहीता अथवा अपरिगृहीता से गमन करने के लिये आलाप सलापादि किया हो, प्रकृति के विरुद्ध अगो से काम क्रीडा करने की चेष्टा की हो, दूसरे के विवाह कराने का उद्यम किया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो मै इन दुष्कृत्यो की आलोचना करता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मैथुन किसे कहते हैं और कितने प्रकार का होता है?

उत्तर—स्त्री, पुरुष के सहवास को 'मैथुन' कहते हैं। देव, मनुष्य और तिर्यंच सबधी मैथुन तीन प्रकार का है।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—ब्रह्मचर्य का अर्थ है—ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य का अर्थ है–रमण करना यानी आत्मा का अपने स्वरूप में रमण करना ब्रह्मचर्य है। इन्द्रियों और मन को विषयों में प्रवृत्त नहीं होने देना; कुशील से वचना, सदाचार का सेवन करना और आत्म-साधना में लगे रहना, आत्म चिंतन करना ब्रह्मचर्य है।

प्रश्न—श्रावक का चौथा अणुव्रत क्या है ?

उत्तर—स्व स्त्री अर्थात् अपने साथ ब्याही हुई स्त्री मे संतोष करना। विवाहित पत्नी के सिवाय शेष औदारिक शरीरधारी अर्थात् मनुष्य तिर्यंच के शरीर को धारण करने वाली स्त्रियों के साथ एक करण एक योग से तथा वैक्रिय शरीरधारी अर्थात् देव शरीरधारी स्त्रियों के साथ दो करण तीन योग से मैथुन सेवन का त्याग करना, स्वदार-संतोष नामक चौथा अणुव्रत है।

प्रश्न—'इत्वरपरिगृहीतागमन' का क्या अर्थ है ?

उत्तर—अपनी विवाहिता अल्प वय वाली–छोटी उम्र की स्त्री से गमन करना इत्वरपरिगृहीतागमन कहलाता है।

प्रश्न—'अपरिगृहीतागमन' अतिचार क्या है ?

उत्तर—स्वयं के साथ सगाई की हुई कुमारी से गमन करना अर्थात् जिसके साथ सगाई हुई है पर फेरे नहीं पड़े हो उसके साथ मैथुन सेवन करने से अपरिगृहीतागमन अतिचार

लगना है।

प्रश्न—'अनगक्रीडा' क्या है ?

उत्तर—काम सेवन के जो प्राकृतिक अग हैं उनके सिवाय अन्य अगों से जो कि काम सेवन के लिए अनग हैं, क्रीडा करना अनगक्रीडा है। हस्त मैथुन का समावेश भी इसी अतिचार मे होता है। स्व स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियो के साथ मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से उनका आलिंगन आदि करने वाल के भी व्रत मलीन होता है इसलिए वह भी अतिचार माना गया है।

प्रश्न—'परविवाहकरणे' की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर—अपना और अपनी सतान के सिवाय अन्य का विवाह कराना परविवाहकरण अतिचार है। स्वदारा सतोषी श्रावक को दूसरो का विवाह आदि कर उन्हे मैथुन मे लगाना निष्प्रयोजन है अत दूसरे का विवाह करने के लिये उद्यत होने मे यह अतिचार है।

प्रश्न—'काममोग तीव्राभिलाप' अतिचार से व्रत दूषित कैसे होता है ?

उत्तर—पाच इन्द्रियों के विपय रूप, रस, गध और स्पर्श मे आसक्ति होना कामभोगतीव्राभिलाप नामक अतिचार है। यह अतिचार भी अपनी ही परिणीता स्त्री से सबध रखता है। जो वाजीकरण आदि प्रयोग से अधिक कामवासना उत्पन्न करे और वात्सायन के चौरासी आसनादि करके काम मे तीव्रता लावे तो उसे कामभोग तीव्राभिलाप नामक

यह अतिचार लगता है और इससे व्रत दूषित होता है।

प्रश्न—स्व-स्त्री संतोष कितने प्रकार से हो सकता है?

उत्तर—स्व स्त्री सतोष नाना प्रकार से हो सकता है। जैसे-१ वर्तमान विवाहित स्त्री से अन्य विवाह नही करूँगा, या इतने वर्ष बीतने पर अन्य विवाह नही करूँगा २ इतने वर्ष हो जाने पर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, ३ वर्ष में या मास में अमुक दिनों से अधिक अब्रह्म सेवन नही करूँगा। ४ दिवा ब्रह्मचारी रहूँगा। ५ अमुक तिथियों, पर्वो पर या श्रावण-भाद्रपद मास में ब्रह्मचारी रहूँगा आदि।

५ अपरिग्रह अणुव्रत

पांचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं, खेत्तवत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण-सुवण्ण का यथा परिमाण, धनधान्य का यथा परिमाण, दुपय चउप्पय का यथा परिमाण, कुविय का यथा परिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरांत अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं पांचवां स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोऊँ—खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणा-

इक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

कठिन शब्दार्थ—परिग्गहाओ–परिग्रह में, खेत्त–खुली जमीन, वत्थु–ढकी भूमि, हिरण्ण–चांदी, सुवण्ण–सोना, दुपय–द्विपद, चउप्पय–चतुष्पद, धन–रोकड पूंजी, सिक्के आदि धान्य–गहूँ आदि अनाज, कुविय–सोना चांदी के सिवाय धातु व अन्य घर सामग्री, खेतवत्थुप्पमाणाइक्कमे–क्षेत्र वस्तु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे–हिरण्य सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण किया हो दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे–द्विपद, चतुष्पद के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे–धन धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, कुवियप्पमाणाइक्कमे–सोना चांदी के सिवाय दूसरी धातुओं के परिमाण का उल्लंघन किया हो।

भावार्थ—खेत, महल, मकान, सोना, चांदी, दास, दासी गाय, हाथी, घोडा आदि धन धान्य तथा सोना चांदी के सिवाय धातु तथा बर्तन आदि और शय्या आसन वस्त्र आदि घर संबंधी वस्तुओं का मैंने जो परिमाण किया है इसके उपरान्त मैं संपूर्ण परिग्रह का मन, वचन, काया से जन्म पर्यंत त्याग करता हूँ । यदि मैंने खेत मकान आदि का परिमाण उल्लंघन किया हो, दास दासी आदि द्विपद और गाय घोडा आदि चतुष्पद की संख्या के परिमाण का उल्लंघन किया हो, धन धान्य के परिमाण का उल्लंघन किया हो, सोने चांदी के

सिवाय अन्य धातुओं के परिमाण का अतिक्रमण किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न —परिग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—किसी भी वस्तु पर मूर्च्छा, ममत्व होना परिग्रह है। खेत, घर, धनधान्य, आभूषण, वस्त्र, वाहन, दासदासी कुटुम्ब-परिवार आदि पर ममत्व रखना बाह्य परिग्रह और क्रोध, मान, माया तथा लोभ आदि आभ्यंतर परिग्रह है।

प्रश्न—अपरिग्रह अणुव्रत—परिग्रह परिमाणव्रत क्या है ?

उत्तर—१ क्षेत्र २ वास्तु ३ धन धान्य ४ हिरण्य ५ सुवर्ण ६ द्विपद ७ चतुष्पद एवं ८ कुप्य (सोने चादी के सिवाय कासा, तांवा, पीतल आदि के पात्र तथा अन्य घर का सामान) —इन नव प्रकार के परिग्रह की मर्यादा करना एवं मर्यादा उपरान्त परिग्रह का एक करण तीन योग से त्याग करना, अपरिग्रह अणुव्रत है। इसका दूसरा नाम इच्छा परिमाण व्रत भी है।

प्रश्न—परिग्रह परिमाण व्रत का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—तृष्णा, इच्छा, मूर्च्छा कम कर संतोष रत रहना ही इस पांचवे परिग्रह परिमाण व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न—क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम अतिचार क्या है ?

उत्तर—धान्योत्पत्ति की जमीन को 'क्षेत्र' (खेत) कहते

है। घर आदि को 'वास्तु' कहते है। भूमिगृह (भोयरा) भूमि गृह पर बना हुआ घर या प्रासाद एव भूमि के ऊपर बना हुआ घर या प्रसाद, वास्तु है। क्षेत्र, वास्तु की जो मर्यादा की है, उसका उल्लघन करना क्षत्रवास्तु प्रमाणातिक्रम अतिचार है। अनुपयोग या अतिक्रम आदि की अपेक्षा से यह अतिचार है जानवूझ कर मर्यादा का उल्लघन करना अनाचार है।

मर्यादित क्षेत्र या घर आदि मे अधिक क्षेत्र या घर आदि मिलने पर बाड या दीवाल आदि हटा कर मर्यादित क्षेत्र या घर मे मिला लेना भी क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम अतिचार है।

प्रश्न—हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम अतिचार क्या हैं ?

उत्तर—घटित (घडे हुए) और अघटित (बिना घडे हुए) सोना चादी के परिमाण का एव हीरा, पन्ना, जवाहरात आदि के प्रमाण का अतिक्रमण करना 'हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम' अतिचार है। नियतकाल की मर्यादा वाले श्रावक पर यदि कोई शासक प्रसन्न हो या पुरस्कार स्वरूप सोने चादी आदि की प्राप्ति हो उस समय व्रत भग के डर से श्रावक का परिमाण से अधिक सोने चादी को नियत अवधि के लिये, 'अवधि पूर्ण होने पर वापिस ले लूगा' इस भावना से दूसरे के पास रखना हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम अतिचार है।

प्रश्न—धन धान्य प्रमाणातिक्रम अतिचार का क्या अर्थ है ?

उत्तर—गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य रूप चार प्रकार का धन एव चौवीस प्रकार के धान्य की मर्यादा का उल्लघन

करना धनधान्य प्रमाणातिक्रम अतिचार है। मर्यादा से अधिक धन धान्य की प्राप्ति होने पर उसे स्वीकार कर लेना परंतु व्रत भंग के डर से उन्हे धान्यादिक के विक जाने पर ले लूगा, यह सोचकर, दूसरे के घर पर रहने देना या काल मर्यादा पूरी होने तक दूसरे के घर रख देना, वाद में उसी को स्वीकार कर लेना धनधान्य प्रमाणातिक्रम अतिचार है।

प्रश्न—द्विपद चतुष्पद प्रमाणातिक्रम क्या है ?

उत्तर—द्विपद–संतान, स्त्री, दास, दासी, तोता, मेना आदि तथा चतुष्पद–गाय, घोड़ा आदि के परिमाण का उल्लंघन करना द्विपद चतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है।

प्रश्न—कुप्य प्रमाणातिक्रम अतिचार कैसे लगता है ?

उत्तर—कुप्य, सोने चादी के सिवाय अन्य वस्तु, आसन शयन, वस्त्र, कवल, वर्तन आदि घर के सामान की मर्यादा का अतिक्रमण करने से कुप्य प्रमाणातिक्रम अतिचार लगता है। जैसे नियमित कुप्य से अधिक संख्या में कुप्य की प्राप्ति होने पर दो दो को मिला कर वस्तुओ को बड़ी करा देना और नियमित संख्या कायम रखना या काल मर्यादा पूरी होने तक–अमुक समय बीत जाने पर मैं तुमसे यह कुप्य ले लूंगा, तुम किसी ओर को न देना आदि।

६ दिशा परिमाण व्रत

छठा दिशिव्रत—उड्ढ दिसि का यथा परिमाण,

अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एव यथा परिमाण, किया है उसके उपरात स्वेच्छा काया से आगे जा कर पाच आश्रव सेवन का पच्चवखाण जावज्जीवाए एगविह × तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, त जहा ते आलोऊँ-उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहे दिशिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खितवुड्ढी, सइअतरद्धा जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ—उड्ढ-ऊर्ध्व (ऊची), अहो-अधो (नीची), तिरिय-तियक् (तिरछी), दिसि-दिशा, उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे-ऊची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे-नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे-तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, खित्तवुड्ढी-क्षेत्रवृद्धि-क्षेत्र बढ़ाया हो, सइअतरद्धा-स्मृत्यन्तर्धान-क्षेत्र परिमाण के भूल जाने से पथ का सदेह पडने पर आगे चला हो।

भावार्थ—जो मैंने ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यक् दिशा का परिमाण किया है उसके आगे गमनागमन आदि

× कोई कोई 'दुविह तिविहेण' भी मानते हैं।

क्रियाओं को मन, वचन, काया से न करूंगा। यदि मैंने ऊर्ध्व दिशा, अधोदिशा और तिर्यक् दिशा के परिमाण का उल्लंघन किया हो क्षेत्र बढ़ाया हो, क्षेत्र परिमाण में सदेह होने पर आगे चला होऊँ तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ कि मेरे वे सब पाप मिथ्या हों।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—दिशाएं कितनी है ?

उत्तर—मुख्य छह दिशाएं है—१ पूर्व, २ पश्चिम, ३ उत्तर ४ दक्षिण ५ ऊर्ध्व (ऊँची) और ६ अधो (नीची)।

प्रश्न—दिशि परिमाण व्रत क्या है ?

उत्तर—छह दिशाओं की मर्यादा करना एवं नियमित दिशा मे आगे आश्रव का सेवन का त्याग करना, दिशि परिमाण व्रत कहलाता है।

प्रश्न—दिशाओं का परिमाण किस तरह किया जाता है?

उत्तर—जिस दिशा में जितना जाना पड़े उतना परिमाण करना। जैसे—ऊँची दिशा में पर्वत, आकाश आदि मे........किमी. से ऊंचा नही जाऊंगा २ खदान, तलघर आदि नीचे स्थानो में......किमी. से नीचे नही जाऊंगा ३ तिरछी दिशा में – पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में........ किमी. से आगे नहीं जाऊंगा।

प्रश्न—क्षेत्र वृद्धि अतिचार क्या है ?

उत्तर—एक दिशा का परिमाण घटा कर दूसरी दिशा

का परिमाण बढा देना क्षेत्र वृद्धि अतिचार है।

प्रश्न—सइअन्तरद्धा अतिचार कैसे लगता है ?

उत्तर—ग्रहण किए हुए परिमाण का स्मरण न रहना जैसे किसी ने पूर्व दिशा मे १०० योजन की मर्यादा कर रखी है परन्तु पूर्व दिशा मे चलते समय उसे मर्यादा याद न रही। यह सोचने लगा कि मैंने पूर्व दिशा मे ५० योजन की मर्यादा की है या १०० योजन की ? इस प्रकार स्मृति न रहने से सदेह पड़ने पर ५० योजन से आगे जाना सइअतरद्धा अतिचार है।

७ उपभोग परिभोग परिमाण व्रत

सातवा व्रत—उपभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे १ उल्लणियाविहि, २ दतणविहि, ३ फलविहि, ४ अब्भगणविहि, ५ उवट्टणविहि, ६ मज्जणविहि, ७ वत्थविहि, ८ विलेवणविहि, ९ पुप्फविहि, १० आभरणविहि, ११ धूवविहि, १२ पेज्जविहि, १३ भक्खणविहि, १४ ओदणविहि, १५ सूपविहि, १६ विगयविहि, १७ सागविहि, १८ महुरविहि, १९ जीमणविहि, २० पाणीयविहि, २१ मुखवासविहि, २२ वाहणविहि, २३ उवाणहविहि, २४ सयणविहि, २५ सचित्तविहि, २६ दव्वविहि, इन छब्बीस बोलो का यथा परिमाण किया है, इसके उपरात उपभोग-परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए

एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा, एवं सातवाँ उपभोगपरिभोग दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—भोयणाओ य, कम्मओ य। भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोऊँ—सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहा ते आलोऊँ—इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दन्तवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरदहतलायसोसणया, असइजणपोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—विहि—विधि का, पच्चक्खायमाणे—प्रत्याख्यान करते हुए, उल्लणियाविहि—अंगोछे की विधि—शरीर पोंछने के वस्त्रों की मर्यादा, दंतणविहि—दतौन, मंजन आदि की मर्यादा, फलविहि—आंवला आदि फल से सिर धोने की मर्यादा, अब्भंगणविहि—शरीर पर मालिश करने के लिए तेल आदि द्रव्यों की मर्यादा, उव्वट्टणविहि—उबटन (पीठी आदि) की मर्यादा, मज्जणविहि—स्नान और स्नान के जल

वा परिमाण, वत्थविहि–पहनने के वस्त्रो की मर्यादा, विलेवणविहि–विलेपन-चदन आदि की मर्यादा, पुप्फविहि–फूलो तथा फूलमालाओं की मर्यादा, आभरणविहि–आभूषणो की मर्यादा, धूवविहि–अगरबत्ती, गुगल आदि धूप के द्रव्यो की मर्यादा, पेज्जविहि–पेय पदार्थो की मर्यादा, भक्खण-विहि–घेवर आदि पकवान की मर्यादा, ओदणविहि–राधे हुए चावल गेहू आदि की मर्यादा, सूर्पविहि–मूग, चना आदि दालो की मर्यादा, विगयविहि–घी, दूध, तेल आदि विकृतिया की मर्यादा, सागविहि–भिण्डी, तरोइ आदि शाक की मर्यादा, महुरविहि–मधुर फलो की मर्यादा, जीमणविहि–रोटी, बाटी आदि जीमने के द्रव्यो की मर्यादा, पाणीयविहि–पीने के पानी की मर्यादा, मुखवासविहि–लोग सुपारी आदि मुखवास की मर्यादा, वाहणविहि–घोडा, मोटर आदि वाहनो की मर्यादा, उवाणहविहि–जूते, चप्पल, मोजे आदि की मर्यादा सयणविहि–गादी, पलग आदि की मर्यादा, सचित्तविहि–सचित्त वस्तुओ की मर्यादा, दव्वविहि–खाने पीने के पदार्थों की सख्या, दुविहे–दो प्रकार का, भोयणाओ–भोजन की अपेक्षा से, कम्मओ–कर्म की अपेक्षा से, य–और सचित्ताहारे–सचित्त का आहार किया हो, सचित्तपडिबद्धाहारे–सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, अप्पउलिओसहिभक्खणया–अपक्व का आहार किया हो, दुप्पउलिओसहिभक्खणया–दुपक्व का आहार किया हो, तुच्छोसहिभक्खणया–तुच्छोपधि का आहार किया हो, पण्णरस–पन्द्रह, कम्मादाणाइ–कर्मादान, इगालकम्मे–

अंगार कर्म, वणकम्मे–वन कर्म, साड़ीकम्मे–शाकटिक कर्म, भाडीकम्मे–भाटो कर्म, फोडीकम्मे–स्फोटी कर्म, दंतवाणिज्जे–दंत वाणिज्य, लक्खवाणिज्जे–लाक्षा वाणिज्य, रसवाणिज्जे–रस वाणिज्य. विसवाणिज्जे–विप वाणिज्य, केसवाणिज्जे–केश वाणिज्य, जंतपीलणकम्मे–यंत्र पीडन कर्म, निल्लंछणकम्मे–निर्लाञ्छन कर्म,दवग्गिदावणया–दावाग्नि दापनता,सरदहतलाय सोसणया–सर, द्रह तड़ाग शोपणता, असईजणपोसणया–असती-जनपोपणता ।

भावार्थ—मैने शरीर पोंछने के अंगोछे आदि वस्त्र का, दतीन करने का, आंवले आदि फल से वाल धोने का, तेल आदि की मालिश करने का, उबटन करने का, स्नान करने के जल का, वस्त्र पहनने का, चन्दनादि का लेपन करने का, पुष्प सूंघने का, आभूषण पहनने का, धूप जलाने का, दूध आदि पीने का, घेवर आदि मिठाई का, चावल गेहूं आदि का, मूंग आदि की दाल का, दूध, दही आदि विगय का, शाक का, मधुर रस वाले फलो का, जीमने के द्रव्यो का पीने के पानी का, इलायची लौंग आदि मुखवास का, घोड़ा, मोटर, कार आदि सवारी का, जूते आदि पहनने का, पलंग आदि पर सोने का, सचित्त वस्तु के सेवन का तथा इनसे बचे हुए शेष पदार्थों का जो परि-माण किया है उसके सिवाय उपभोग तथा परिभोग में आने वाली सब वस्तुओं का त्याग करता हूं । जीवन पर्यंत उसका मन, वचन, काया से सेवन नही करूंगा ।

उपभोग परिभोग दो प्रकार का है–१ भोजन सबधी और २ कर्म–धधा व्यापार–सबधी । भोजन सबधी उपभोग परिभोग के पाच और कर्म सबधी उपभोग परिभोग के पन्द्रह इस तरह कुल बीस अतिचार होते हैं। मैं उनकी आलोचना करता हूँ। यदि मैंने १ मर्यादा से अधिक सचित्त का आहार किया हो, २ सचित्त पडिबद्ध का आहार किया हो, ३ अपक्व का आहार किया हो, ४ दुष्पक्व का आहार किया हो, ५ तुच्छौ-षधि का भक्षण किया हो तथा पन्द्रह कर्मादान का सेवन किया हो तो म उनकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—उपभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पदार्थ एक ही बार भोगे जाते हैं वे 'उपभोग' कहलाते हैं जैसे–अन्न, पानी आदि।

प्रश्न—परिभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—बार-बार भोगे जाने योग्य पदार्थ 'परिभोग' कहलाते हैं जैसे–वस्त्र, आभूषण, शय्या आदि।

प्रश्न—उपभोग परिभोग परिमाण व्रत क्या है ?

उत्तर—उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओ का परिमाण करना छब्बीस बोलो की मर्यादा करना एव मर्यादा के उपरात उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओ के भोगोपभोग का एव पन्द्रह कर्मादान का त्याग करना उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है।

प्रश्न—'सचित्ताहार' अतिचार क्या है ?

उत्तर—सचित्त त्यागी श्रावक का सचित्त वस्तु जैसे पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि का आहार करना एवं सचित्त वस्तु का परिमाण करने वाले श्रावक का परिमाणोपरान्त सचित्त वस्तु का आहार करना सचित्ताहार है।

प्रश्न—सचित्त त्याग से क्या लाभ है ?

उत्तर—सचित्त पदार्थों का त्याग करने से अनेक लाभ है। जीवों को अभयदान मिलता है और इन्द्रिय दमन, रसपरित्याग तथा इच्छा का निरोध होता है।

प्रश्न—सचित्त प्रतिवद्धाहार किसे कहते है ?

उत्तर—सचित्त वृक्षादि से संम्वद्ध अचित्त गोंद या पक्के फल आदि खाना अथवा सचित्त वीज से सम्वद्ध अचित्त खजूर आदि खाना या बीज सहित फल को यह सोचकर खाना कि कि इसमे अचित्त अंश खा लूगा और सचित्त वीजादि अंश को फेंक दूगा, 'सचित्तप्रतिवद्धाहार' है।

प्रश्न—'अपक्व औषधि भक्षण' अतिचार कैसे लगता है ?

उत्तर—अपक्व अर्थात् पूरी तरह अचित्त न वने हुए पदार्थों का आहार करने से अपक्व औषधि भक्षण अतिचार लगता है।

प्रश्न—'दुष्पक्व औषधि भक्षण' अतिचार क्या है ?

उत्तर—दुष्पक्व अर्थात् अधपकें या अविधि से पके हुए या बुरी तरह से विशेप हिंसक तरीके से पकाये गये पदार्थ

जैसे छिलके समेत सेके हुए भुट्टे, होले, ऊवी आदि का आहार करना, दुष्पक्व औषधि भक्षण अतिचार है।

प्रश्न—तुच्छौषधि किसे कहते है ?

उत्तर—तुच्छ अर्थात् अल्प सार वाले-जिसमे खाने का अश कम और फेंकने का अश ज्यादा हो जैसे सीताफल, गन्ना आदि, ऐसे पदार्थों का भक्षण करने से तुच्छौषधि भक्षण अतिचार लगता है।

प्रश्न—कर्मादान किसे कहते है ?

उत्तर—जिन धन्धो और कार्यों से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का विशेष रूप से वध होता है, उन्ह 'कर्मादान' कहते हैं। अथवा कर्मों के हेतुओ को कर्मादान कहते हैं। कर्मादान पन्द्रह हैं। जो श्रमणोपासक होते हैं उन्ह ये पन्द्रह कर्मादान स्वय करना, दूसरा से करवाना और करते हुए को अनुमोदन करना नही कल्पता है।

प्रश्न—इगालकम्मे (अगार कर्म) किसे कहते है ?

उत्तर—अगार अर्थात् अग्नि विपयक कार्य को 'अगारकर्म' कहते है। अग्नि से कोयला वनाने और बेचने का धधा करना। इसी प्रकार अग्नि के प्रयोग से होने वाले दूसरे कर्मों का भी इसमे ग्रहण हो जाता है जैसे कि ईंटो के भट्टे पकाना आदि।

प्रश्न—वणकम्मे (वनकर्म) किसे कहते हैं ?

उत्तर—वन विपयक कम को 'वन कर्म' कहते हैं। जगल की खरीद कर वृक्षो और पत्तो आदि को काट कर बेचना और उसमे आजीविका करना वनकर्म है। इसी प्रकार

(वनोत्पन्न) बीजों का पीसना (आटे आदि की चक्की) भी वनकर्म है।

प्रश्न—साड़ीकम्मे (शाकटिक कर्म) किसे कहते हैं?

उत्तर—गाड़ी, तांगा, इक्का आदि तथा उनके अवयवों (पहिया आदि) को बनाने और बेचने आदि का धंधा करके आजीविका करना 'शाकटिक कर्म' है।

प्रश्न—भाडीकम्मे (भाटीकर्म) किसे कहते हैं?

उत्तर—गाडी आदि से दूसरों का सामान एक जगह से दूसरी जगह भाड़े से ले जाना। बैल, घोडे आदि किराये पर देना और मकान आदि बना बना कर भाड़े पर देना, इत्यादि धंधे करके करके आजीविका करना 'भाटी कर्म' है।

प्रश्न—फोडीकम्मे (स्फोटिक कर्म) किसे कहते हैं?

उत्तर—हल कुदाली आदि से भूमि फोड़ना। इस प्रकार का धंधा करके आजीविका करना 'स्फोटिक कर्म' है।

प्रश्न—दंतवाणिज्जे (दंत वाणिज्य) किसे कहते हैं?

प्रश्न—हाथीदांत, मृग आदि का चर्म (मृगछाला आदि) चमरी गाय के केशों से बने हुए चामर और भेड़ के केश–ऊन आदि को खरीदने और बेचने का धंधा करके आजीविका करना 'दंतवाणिज्य' है।

प्रश्न—लक्खवाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य) किसे कहते हैं?

उत्तर—लाख का क्रय-विक्रय करके आजीविका करना 'लाक्षावाणिज्य' है। इसमें त्रस जीवों की महाहिंसा होती

है। इसी प्रकार त्रस जीवो की उत्पत्ति के कारणभूत तिलादि द्रव्यो का व्यापार करना भी इसी मे सम्मिलित है।

प्रश्न—केसवाणिज्जे (केशवाणिज्य) क्या है ?

उत्तर—केशवाले जीवो का अर्थात् गाय, भैस आदि पशु तथा दासी आदि को बेचने का व्यापार करना 'केशवाणिज्य' है।

प्रश्न—रस वाणिज्जे (रस वाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर—मदिरा आदि रसो को बेचने का धन्धा करना रसवाणिज्य है।

प्रश्न—विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर—विष (अफीम संखिया आदि जहर) को बेचने का धन्धा करना 'विषवाणिज्य' है। जीवघातक तलवार आदि शस्त्रो का व्यापार करना भी इसी मे सम्मिलित है।

प्रश्न—जनपीलणकम्मे (यन्त्रपीडनकर्म) क्या है ?

उत्तर—तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र—कोल्हू, चरखी आदि से तिल ईख आदि पीलने का धंधा करना 'यन्त्रपीडनकर्म' है। उसी प्रकार महारम्भपापक जितने भी यन्त्र हैं उन सबका समावेश यन्त्रपीडन कर्म मे होता है।

प्रश्न—निल्लछणकम्मे (निर्लाञ्छनकर्म) किसे कहते हैं ?

उत्तर—बैल, घोडे आदि को खसी (नपुसक) बनाने का धधा करना 'निर्लाञ्छनकर्म' है।

प्रश्न—दवग्गिदावणया (दावाग्निदापनता) का क्या अर्थ है ?

उत्तर—खेत आदि साफ करने के लिये जगल मे किसी

से आग लगवा देना अथवा स्वयं लगाना दावाग्निदापनता है। इसमें असंख्य त्रस और अनंत स्थावर जीवों की हिंसा होती है।

प्रश्न—सरदहतलायपरिसोसणया (सरोहृदतडागपरिशोषणता) किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वतः बना हुआ जलाशय 'सरोवर' कहलाता है। नदी आदि में जो अधिक गहरा प्रदेश होता है उसे 'हृद' कहते हैं। जो खोद कर जलाशय बनाया जाता है उसे 'तड़ाग' (तालाब) कहते हैं। इन सरोवर, हृद, तालाव आदि को सूखाना 'सरोहृदतडागपरिशोषणता' है।

प्रश्न—असईजण पोसणया (असतीजन पोषणता) किसे कहते है ?

उत्तर—आजीविका कमाने के लिये दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना 'असतीजन पोषणता' है। पापबुद्धि पूर्वक कुक्कुट मार्जाद (बिल्ली) आदि हिंसक जानवरों का पोषण करना भी इसी में सम्मिलित है।

प्रश्न—पांचवां, छठा और सातवां व्रत प्रायः एक करण तीन योग से क्यों लिये जाते हैं ?

उत्तर—श्रावक अपने पास मर्यादा उपरान्त परिग्रह हो जाने पर जैसे उसे धर्म-पुण्य में व्यय करता है, वैसे ही वह अपनी पुत्री आदि को भी देने का ममत्व त्याग नहीं पाता। इसी प्रकार जिसका अब कोई स्वामी नहीं रह गया हो, ऐसा कही गड़ा हुआ परिग्रह मिल जाय, तो भी वह उसे अपने स्वजनों को देने का ममत्व त्याग नही पाता। अथवा अपने

पुत्रादि, जिन्हे परिग्रह बाट कर पृथक् कर दिया हो उनके परिग्रह-वृद्धि मे परामर्श देने का उसे प्रसग आ जाता है।

इसी प्रकार छठे, सातवे व्रत की भी स्थिति है। जैसे श्रावक अपनी की हुई दिशा की मर्यादा के उपरात स्वय तो नही जाता, पर कई वार उसे अपने पुत्र आदि को विद्या, व्यापार, विवाह आदि के लिए भेजने का प्रसग आ जाता है।

ऐसे ही उपभोग परिभोग वस्तुओ की या कर्मादानो की जितनी मर्यादा की है, उसके उपरात तो वह स्वय भोगोपभोग या कम नही करता, परतु उसे अपने पुत्रादि को भोगने के लिए या करने के लिए कहने का अवसर आ जाता है।

इसलिए श्रावक पाचवे, छठे और सातवे व्रत का प्राय "मै नही करूगा" इतना ही व्रत ले पाता है परन्तु 'मै नही कराऊँगा'—यो भी व्रत नही ले पाता। विशिष्ट श्रावक इन व्रतो का दो करण तीन योग आदि से भी प्रत्याख्यान कर सकते हैं।

प्रश्न—रात्रि भोजन करने वाले को कौनसे व्रत मे दोष लगता है?

उत्तर—रात्रि भोजन करने वाले को मुख्य रूप से सातवे व्रत मे तथा गौण रूप से अन्य व्रतो मे दोष लगता है। रात्रि भोजन का त्याग श्रावक के सातवे व्रत मे गर्भित है, यह उपभोग परिभोग की कालाश्रित मर्यादा है।

रात्रि भोजन के प्रत्याख्यान के अतिरिक्त अन्य अनेक वस्तुओ के प्रत्याख्यान होने से भी सातवां व्रत हो सकता है।

रात्रि भोजन का त्याग कर भंग करने वाला सातवे व्रत का भंजक समझा जायेगा । यावज्जीवन के लिए जो रात्रिभोजन, कुशील, वनस्पति और सचित्त जल त्याग रूप चार खंदो को धारण करता है वह भी श्रावक के सातवें व्रत मे गिना जाता है ।

८ अनर्थदण्ड विरमण व्रत

आठवाँ अणट्ठादण्ड विरमण व्रत चउव्विहे अणट्ठा-दण्डे पण्णत्ते, तंजहा—अवज्झाणाचरिए, पमायाचरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं अणट्ठादण्ड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार—आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एवं आठवाँ अनर्थदण्ड विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊँ—कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरि-भोगाइरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

कठिन शब्दार्थ—अणट्ठादंडे—अनर्थदण्ड, **अवज्झाणा-चरिए**—अपध्यान करना, **पमायाचरिए**—प्रमाद पूर्वक आचरण करना, **हिंसप्पयाणे**—हिंसा आदि पापो के साधन देना, **पाव-कम्मोवएसे**—पापकर्म का उपदेश देना, **आए**—अपने लिए, **वा**—

अथवा, राए–राजा के लिए, नाए–ज्ञाति के लिए, परिवारे–सेवक भागीदार आदि के लिए, देवे–वैमानिक ज्योतिषी देवो के लिए, नागे–भवनपति देवो के लिए भूए–भूत आदि के लिए जक्खे–यक्ष आदि व्यंतर देवो के लिए, एत्तिएहि–इत्यादि आगारेहि–आगारो के, अण्णत्थ–सिवाय दूसरे प्रकार से कंदप्पे–काम विकार पैदा करने वाली कथा की हो, कुक्कुइए–भण्ड कुचेष्टा की हो, मोहरिए–मुखरीवचन बोला हो, संजुत्ताहिगरणे–अधिकरण जोड रखा हो, उवभोगपरिभोगाइरित्ते–उपभोग परिभोग अधिक बढाया हो।

भावार्थ—अनर्थ दंड चार प्रकार का कहा है–१ अपध्यान २ प्रमादचर्या ३ हिंसादान और ४ पापोपदेश। मैं इन चारो प्रकार के अनर्थदंड का त्याग करता हूँ। यदि आत्म रक्षा के लिए, राजा की आज्ञा से, जाति तथा परिवार (कुटुम्ब) के मनुष्यो के लिए तथा नाग, भूत, यक्ष आदि देवो के वशीभूत होकर अनर्थदण्ड का सेवन करना पडे तो इसका आगार रखता हूँ। इन आगारो के सिवाय मैं जन्म पर्यन्त अनर्थदंड का मन, वचन, काया से स्वयं सेवन नही करूंगा, न दूसरो से कराऊँगा। यदि मैंने काम जागृत करने वाली कथा की हो, भांडो की तरह दूसरो को हसाने के लिए हंसी दिल्लगी की हो या दूसरों की नकल की हो, निरर्थक बकवाद किया हो, तलवार, ऊखल मूसल आदि हिंसाकारी हथियारो या औजारो का निष्प्रयोजन संग्रह किया हो, उपभोग परिभोग मे आने वाली वस्तुओ का अधिक संग्रह किया हो तो मैं उसकी

आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—दण्ड किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे आत्मा व अन्य प्राणी दंडित हो अर्थात् उनकी हिंसा हो इस प्रकार की मन, वचन, काया की कलुषित प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं।

प्रश्न—अर्थदण्ड किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्व, पर या उभय के प्रयोजन के लिये त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा करना अर्थदण्ड है।

प्रश्न—अनर्थदण्ड किसे कहते है ?

उत्तर—आत्मा को मलीन करके व्यर्थ कर्म-बंधन कराने वाली प्रवृत्तियाँ अनर्थदण्ड हैं। अनर्थदण्ड से निष्प्रयोजन हिंसा होती है। अतः वे सारी क्रियाएँ, जिनसे अपना या अपने कुटुम्ब का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नही होता है अनर्थदण्ड है।

प्रश्न—अनर्थदण्ड विरमणव्रत क्या हैं ?

उत्तर—अपध्यान करना, प्रमादपूर्वक प्रवृत्ति करना, हिंसाकारी शस्त्र देना एवं पाप कर्म का उपदेश देना, ये सभी कार्य अनर्थदण्ड है। अनर्थदण्ड के इन कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्ड विरमणव्रत है।

प्रश्न—अवज्झाणाचरिए (अपध्यानाचरित) किसे कहते हैं ?

उत्तर—विना कारण आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करना या सकारण तीव्र आर्त्तध्यान करना अपध्यानाचरित कहलाता है। क्रोध मे अपना सिर आदि पीट लेना, विना कारण ही दात पीसना, पुरानी वातो को याद करके रोना, शेख चिल्ली के समान भौतिक सुख पाने के लिये कल्पना की उडाने भरना अपध्यानाचरित है।

प्रश्न—प्रमाद किसे कहते हैं और इसके कितने भेद है ?

उत्तर—शुभ उपयोग के अभाव को या शुभ कार्य मे यत्न, उद्यम न करने को प्रमाद कहते हैं। प्रमाद के पाच भेद है–१ मद्य २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा और ५ विकथा। ये पाच प्रमाद जीव को ससार मे गिराते हैं।

प्रश्न—पमायाचरिए (प्रमादाचरित) किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य, विषय कषाय, निद्रा और विकथा मे लगे रहना तथा प्रमाद से कार्य करना जिससे जीवो की हिंसा हो, जैसे-विना देखे चलना, फिरना, वस्तु को उठाना रखना, पानी, तेल, घी आदि तरल पदार्थों के बर्तनो को खुले रख देना आदि प्रमादाचरित है।

प्रश्न—हिंसप्पयाणे (हिंस्र प्रदान) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसा आदि पापो के साधन अस्त्र शस्त्रादि या तत्सबधी साहित्य दूसरो को देना हिंस्रप्रदान कहलाता है।

प्रश्न—पावकम्मोवएसे (पापकर्मोपदेश) क्या है ?

उत्तर—पाप कार्यों का उपदेश देना, पाप कार्यों की प्रेरणा करना पापकर्म उपदेश है।

प्रश्न—पापकर्मोपदेश के उदाहरण दीजिए ?

उत्तर—जैसे किसी को कहना—कंदमूल, मद्य, मांस आदि का सेवन करने से स्वास्थ्य और शक्ति बढ़ती है (हिंसा) या न्यायालय में इस प्रकार झूठ बोलने से तथा झूठी साक्षी देने से तुम सदोष होते हुए भी बच जाओगे (झूठ) या सरकारी पद पाये हो, तो कुछ घूंस आदि करके पैसा बनाओ (चोरी) या जीवन को सुखमय व्यतीत करने के लिए दूसरा विवाह करलो (मैथुन) या व्यापार धन्धे मे अत्यधिक हिंसा आदि के कार्यों की बिधि बताना अथवा एक दुकान या एक मिल नई खोल लो (परिग्रह) आदि।

प्रश्न—कंदप्पे (कंदर्प) किसे कहते है ?

उत्तर—काम उत्पन्न करने वाले वचन का प्रयोग करना, राग के आवेश मे हास्य मिश्रित मोहोद्दीपक मजाक करना कन्दर्प कहलाता है।

प्रश्न—कुक्कुइए (कौत्कुच्य) अतिचार क्या है ?

उत्तर—भांडों की तरह भौएँ, नेत्र, नासिका ओष्ठ, मुख, हाथ, पैर आदि अंगों को विकृत बना कर दूसरों को हसाने वाली चेष्टा करना कौत्कुच्य अतिचार है।

प्रश्न—मोहरिए (मौखर्य्य) अतिचार कैसे लगता है ?

उत्तर—ढिठाई के साथ असत्य, ऊटपटांग वचन बोलने से मौखर्य्य अतिचार लगता है।

प्रश्न—संजुत्ताहिगरणे (संयुक्ताधिकरण) किसे कहते है ?

उत्तर—पृथक्-पृथक् स्थानों पर पड़े हुए शस्त्रों के

अवयवो को मिला कर एक स्थान पर रखना, शस्त्रो का विशेष सग्रह रखना सयुक्ताधिकरण कहलाता है। कार्य करने मे समर्थ ऐसे ऊखल और मूसल, शिला और लोढा, हाल और फाल, गाडी और जूआ, धनुष और बाण, वसूला और कुल्हाडी आदि दुर्गति मे ले जाने वाले अधिकरणो को जो साथ ही काम आते हैं, एक साथ रखना सयुक्ताधिकरण अतिचार है।

प्रश्न—कन्दर्पादि से कौन कौन से अनर्थदण्ड होते हैं ?

उत्तर—कन्दर्प और कौत्कुच्य से अपध्यानाचरित और प्रमादाचरित अनर्थदण्ड होता है। मौखर्य से पापकर्मोपदेश, सयुक्ताधिकरण से हिंस्रप्रदान और उपभोग परिभोगातिरेक से हिंस्रप्रदान और प्रमादाचरित अनर्थदण्ड होता है।

९ सामायिक व्रत

नववाँ सामायिक व्रत सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव नियम पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, ऐसी मेरी सद्दहणा परूपणा तो है, सामायिक का अवसर आये सामायिक करूँ, तब फरसना कर के शुद्ध होऊँ। एव नववे सामा-; यिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तजहा ते आलोऊँ—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय-दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ

तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—सामायिक-समभाव की साधना, सावज्जं जोगं-सावद्य योग का, जावनियमं—यावत् नियम तक, सद्दहणा-श्रद्धा, परूवणा-प्ररूपणा-प्रतिपादन करना, मणदुप्पणिहाणे-मनोदुष्प्रणिधान-मन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो, वयदुप्पणिहाणे-वचनदुष्प्रणिधान-वचन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो, कायदुप्पणिहाणे-कायदुष्प्रणिधान-काया के अशुभयोग प्रवर्ताये हो, सामाइयस्स सइ अकरणया-सामायिक की स्मृति न की हो, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया-समय पूर्ण हुए विना सामायिक पारी हो।

भावार्थ—मैंने सावद्य योग का त्याग कर जितने काल का नियम किया है उसके अनुसार सामायिक व्रत का पालन करता हूँ। मै नियम पर्यंत मन, वचन, काया से पापजनक क्रिया न करूंगा और न दूसरों से कराऊँगा। "सामायिक का यह स्वरूप है और यह करने योग्य है?" ऐसी मेरी श्रद्धा है और अन्य के समक्ष भी ऐसा ही कहता हूँ। मैंने सामायिक के समय मन में बुरे विचार किये हो, कठोर या पापजनक वचन बोले हो, अयतनापूर्वक शरीर से चलना फिरना, हाथ पांव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाएँ की हो, सामायिक करने का काल याद न रखा हो, समय पूर्ण हुए विना सामायिक पारी हो या अनवस्थित रूप से जैसे तैसे सामायिक की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे संपूर्ण

पाप निष्फल हो ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—सामायिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—सर्व सावद्य व्यापारो का त्याग करना और निरवद्य व्यापारो मे प्रवृत्ति करना सामायिक है। सम अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति सामायिक है। अथवा सम अर्थात् राग द्वेष रहित पुरुष की प्रतिक्षण कर्म निर्जरा से होने वाली अपूर्व शुद्धि सामायिक है।

प्रश्न—सामायिक व्रत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सम्पूर्ण सावद्य व्यापार का त्याग कर आर्तध्यान रौद्रध्यान दूर कर धर्मध्यान मे आत्मा को लगाना और मनोवृति को समभाव मे रखना सामायिक व्रत है। एक सामायिक का काल दो घडी अर्थात् एक मुहूर्त है। सामायिक मे ३२ दोषो‡ को वर्जना चाहिये।

१० देशावकाशिक व्रत

दसवाँ देसावगासिक व्रत–दिन-प्रति प्रभात से प्रारम्भ कर के पूर्वादि छहो दिशाओ मे जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरात आगे जाने का तथा दूसरो को भेजने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त दुविह

‡ सामायिक के अतिचार, दोष, आदि की विशेष जानकारी के लिए सघ द्वारा प्रकाशित "सार्थ सामायिक सूत्र" पुस्तक देखें।

तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, जितनी भूमिका की हद रखी हो, उसमें जो द्रव्यादि की मर्यादा की है, उसके उपरांत उपभोग-परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं दसवें देसावगासिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोऊँ-आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ---देसावगासिक-दिशावकासिक, जाव अहोरत्तं-एक दिन रात पर्यन्त, आणवणप्पओगे-नियमित सीमा से बाहर की वस्तु मंगवाई हो, पेसवणप्पओगे-परिमाण किये हुए क्षेत्र से बाहर वस्तु भिजवाई हो, सद्दाणुवाए-शब्द करके चेताया हो, रूवाणुवाए-रूप दिखा कर अपने भाव प्रकट किये हों, बहियापुग्गलपक्खेवे-कंकर आदि फैंक कर दूसरों को बुलाया हो।

भावार्थ---छठे दिग्व्रत में जो दिशाओं का परिमाण किया है देशावकाशिक व्रत में उसका प्रतिदिन संकोच किया जाता है। मैं उस संकोच किये गये दिशाओं का परिमाण से बाहर के क्षेत्र में जाने का तथा दूसरों को भेजने का त्याग करता

हूँ। एक दिन और एक रात तक परिमाण की गई दिशाओ से आगे मन, वचन, काया से न स्वय जाऊँगा और न दूसरो को भेजूगा। मर्यादित क्षेत्र मे द्रव्यादि का जितना परिमाण किया है उस परिमाण के सिवाय उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का त्याग करता हूँ। मन, वचन, काया से मै उनका सेवन नही करूँगा। यदि मैने मर्यादा के बाहर की वस्तु मगवाई हो, भिजवाई हो, शब्द करके चेताया हो, रूप दिखा कर अपने भाव प्रकट किये हो, ककर आदि फेंककर दूसरो को बुलाया हो तो म उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—देशावकाशिक व्रत किसे कहते है ?

उत्तर—छठे व्रत मे जो दिशाओ का परिमाण किया है, उसका तथा सब व्रतो का प्रतिदिन सकोच करना देशावकाशिक व्रत है। देशावकाशिक व्रत मे दिशाओं का सकोच कर लेने पर मर्यादा के बाहर की दिशाओ मे आश्रव का सेवन न करना तथा मर्यादित दिशाओ मे जितने द्रव्यो की मर्यादा की है उसके उपरान्त द्रव्यो का उपभोग नही करना चाहिये।

प्रश्न—आठो ही व्रतो के सक्षेप का उदाहरण दीजिये ?

उत्तर—जैसे-आज मैं सम्पूर्ण दिन या मुहूर्त्त दो मुहूर्त्त आदि तक १ सापराधी त्रस जीव पर भी हाथ नही चलाऊँगा

(अहिंसा) २ सूक्ष्म झूठ भी नही बोलूंगा, मौन रखूगा (सत्य) ३ किसी की वस्तु (तिनका आदि भी) विना पूछे-मांगे नही लूगा (अचौर्य) ४ स्त्री का स्पर्श भी नहीं करूँगा (ब्रह्मचर्य) ५ अमुक परिमाण से अधिक परिग्रह मिलने पर अपना करके नही रखूगा (परिग्रह परिमाण व्रत) ६ अपने गांव नगर से वाहर नही जाऊँगा, गांव नगर में भी अपने घर दुकान या नौकरी के स्थान से अन्य स्थानों पर नही जाऊँगा (दिग्व्रत) ७ पच्चीस द्रव्य के उपरांत नही लगाऊँगा आदि जो द्रव्यादि उपभोग परिभोग पदार्थों की मर्यादा की है उन्हे घटा कर आज १० आदि से अधिक द्रव्य भोग में नही लूगा, अमुक परिमाण मे आय हो जाने के वाद व्यापार नहीं करूगा (उपभोग परिभोग व्रत) देवादि के लिए भी अर्थदण्ड नही करूँगा (अनर्थदण्ड) इत्यादि प्रकार से प्रतिदिन आठ व्रतों का संक्षेप किया जा सकता है।

प्रश्न—वर्तमान में व्रत संक्षेप कैसे किया जाता है ?

उत्तर—वर्तमान मे चौदह नियमों से कुछ व्रतों का प्रतिदिन संक्षेप किया जाता है। चौदह नियम इस प्रकार हैं—

१ **सचित्त**—पृथ्वीकाय आदि सचित्त की मर्यादा २ **द्रव्य**—खान, पान संबंधी द्रव्यों की मर्यादा ३ **विगय**—पांच विगयों में से विगय की मर्यादा ४ **पन्नी**—पगरखी, चप्पल, जूते, मौजे आदि की मर्यादा ५ **ताम्बूल**—मुखवास की मर्यादा ६ **वस्त्र**—पहनने ओढने के वस्त्रों की मर्यादा ७ **कुसुम**—पुष्प, इत्र आदि

की मर्यादा ८ वाहन–कार, मोटर आदि वाहनो की मर्यादा ९ शयन–शयन योग्य खाट, पलग, बिस्तर की मर्यादा १० विलेपन–केशर, चदन, तेल, साबुन, अजन आदि की मर्यादा ११ ब्रह्मचर्य–चौथे अणुव्रत को भी सकुचित करना, कुशील की मर्यादा १२ दिग्–दिशाओ की अधिक मर्यादा १३ स्नान–स्नान की सख्या और जल की मर्यादा १४ भक्त–भोजन-पानी की मर्यादा, एक बार या दो बार तथा वस्तु का परिमाण करना।

इन चौदह बोलो मे से ग्यारहवे बोल से चौथे व्रत का, बारहवे बोल से छठे व्रत का और शेष बोलो से सातवे व्रत का सक्षेप किया जाता है।

प्रश्न—चौदह नियम धारण करने को दसवे व्रत मे क्यो लिया है ?

उत्तर—प्रतिदिन चौदह नियम धारण करने को दसवे व्रत मे गिना है क्योकि चौदह नियम धारण करने से व्रतो का सक्षेप होता है और मर्यादित भूमि के उपरात, आश्रव का त्याग होता है।

चौदह नियमो मे से किसी एक नियम को प्रतिदिन धारण करना भी देशावगासिक व्रत मे अतगत है। किसी भी करण योग से मर्यादित भूमि के बाहर पाच आश्रव का त्याग दसवा व्रत है।

प्रश्न—क्या सामायिक मे चौदह नियम धारण किये जा

सकते हैं ?

उत्तर—सामायिक में सावद्य भाषा टाल कर चौदह नियमों की निर्धारणा की जा सकती है जैसे इतने द्रव्य उप-रांत त्याग आदि ।

प्रश्न—क्या सिर्फ दसवां व्रत धारण किया जा सकता है ?

उत्तर—केवल दसवां व्रत धारण तो किया जा सकता है परन्तु अन्य व्रत नही होने से उनका संक्षिप्तीकरण नहीं होकर केवल एक दिन की मर्यादा होगी ।

प्रश्न—आणवणप्पओगे (आनयन प्रयोग) किसे कहते हैं ?

उत्तर—मर्यादा किये हुए क्षेत्र से वाहर स्वयं न जा सकने से दूसरे को, तुम यह चीज लेते आना इस प्रकार संदेश आदि देकर वस्तु मंगाना आनयन प्रयोग अतिचार है ।

प्रश्न—पेसवणप्पओगे (प्रेष्य प्रयोग) अतिचार क्या है ?

उत्तर—मर्यादित क्षेत्र से वाहर स्वयं जाने से मर्यादा का अतिक्रम हो जायगा । इस भय से नौकर चाकर आदि आज्ञा-कारी पुरुष को भेज कर कार्य कराना प्रेष्य प्रयोग अतिचार है ।

प्रश्न—सद्दाणुवाए (शव्दानुपात) किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने घर की वाड़ या चहारदीवारी के अंदर नियमित क्षेत्र से वाहर कार्य होने पर व्रती का व्रत भंग के भय से स्वयं वाहर न जाकर निकटवर्ती लोगों को छींक, खांसी आदि शब्द द्वारा ज्ञान कराना शव्दानुपात अतिचार है ।

प्रश्न—रूवाणुवाए (रूपानुपात) अतिचार क्या है ?

उत्तर—नियमित क्षेत्र से वाहर प्रयोजन होने पर दूसरो को अपने पास बुलाने के लिए अपना या पदार्थ विशेष का रूप दिखाना रूपानुपात अतिचार है।

प्रश्न—बहियापुग्गलपक्खेवे (वहि पुद्गल प्रक्षेप) किसे कहते हैं ?

उत्तर—नियमित क्षेत्र से वाहर प्रयोजन होने पर दूसरो को जताने के लिये ढेला, कंकर आदि फेंकना वहि पुद्गल प्रक्षेप कहलाता है।

११ पौषध व्रत

ग्यारहवा पडिपुण्ण पोषध व्रत—असण पाण खाइम साइम का पच्चक्खाण, अबम सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावण्णग विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्जजोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसी मेरी सद्दहणा परूपणा है, पोषध का अवसर आये पौषध करूँ, तब फरसना कर के शुद्ध होऊँ, एव ग्यारहवा प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोऊ—अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहियसेज्जासथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सेज्जा-

संथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण-भूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—पडिपुण्ण–प्रतिपूर्ण, असणं–अशन, पाणं–पान, खाइमं–खाद्य, साइमं–स्वाद्य, अबंभ-मैथुन, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जा संथारए–पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह न देखा हो, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए–पूंजा न हो या अच्छी तरह से पूंजा न हो, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि–उच्चार प्रस्रवण की भूमि देखी हो या अच्छी तरह न देखी हो, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि–उच्चार प्रस्रवण की भूमि पूंजी न हो या अच्छी तरह से पूजी न हो, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया–पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो।

भावार्थ—मैं प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में एक दिन रात के लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ। अब्रह्म सेवन का, अमुक मणि सुवर्ण आदि के आभूषण पहनने का, फूलमाला पहनने का, सुगंधित चूर्ण और चंदन आदि के लेप करने का, तलवार आदि शस्त्र और हल मूसल आदि औजारों से होने वाले सभी सावद्य व्यापार का मैं त्याग करता हूँ यावत् एक दिन रात तक पौषध व्रत का पालन करता हुआ मैं उन पाप क्रियाओं

का मन, वचन, काया से सेवन नही, करूगा और न दूसरो से कराऊगा। ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा तो है किन्तु पौषध का समय आने पर जब उसका पालन करूगा तब शुद्ध होऊगा। यदि मैने पौषध मे शय्या सस्तारक का प्रतिलेखन प्रमाजन न किया हो या अच्छी तरह न किया हो, मल मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन प्रमाजन न किया हो या अच्छी तरह नही किया हो तथा पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन नही किया हो तो मै उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—पौषध किसे कहते हैं? पौषधोपवास का क्या अर्थ है?

उत्तर—'पौषध', का अर्थ है—जो धर्म का पोषण (पुष्टि) करे, उसे पौषध कहते हैं। उपवास सहित पौषध को पौषधोपवास कहते है। या पौषध युक्त उपवास को 'पौषधोपवास' कहते हैं।

प्रश्न—पौषध के कितने भेद हैं?

उत्तर—पौषध दो प्रकार का हैं—१ प्रतिपूर्ण और २ देश। जिसमे चारो आहार सर्वथा छोडे जाय, वह 'प्रतिपूर्ण पौषध' है तथा जिसमे पानाहार या चारों आहार किये जाय वह 'देश पौषध' है। प्रतिपूर्ण पौषध करने वाला चारो आहार का त्याग करेगा। अचित्त पानी पीने वाला तीन

आहार का त्याग करेगा। इसी प्रकार सात, छह आदि प्रहर का पौषध करने वाला अपने-अपने नियम के अनुसार प्रत्याख्यान करेगा इस प्रकार पौषध व्रत के अनेक विकल्प हैं। वे सभी ग्यारहवे व्रत मे ही समाविष्ट होते हैं।

प्रश्न—पौषध मे आहार, अब्रह्म, शरीर सत्कार और सावद्ययोग, ये चारों बोल छोड़ना आवश्यक है क्या ?

उत्तर—पौषध में आहार को छोड़ कर शेष तीन बोल छोड़ना आवश्यक है। आहार चारों या तीनो छोड़े जा सकते है कदाचित् चारो आहार किये भी जा सकते हैं।

प्रश्न—पौषध का न्यूनतम काल कितना है ?

उत्तर—पौषध का न्यूनतम काल चार प्रहर (लगभग १२ घंटे) है।

प्रश्न—वर्तमान में देश पौषध को क्या कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें मात्र पानी पीया जाता है ऐसे उपवास युक्त पौषध को जो आठ प्रहर से कम होता है तिविहार पौषध (देश पौषध) कहते हैं। जिसमें चारों आहार किये जाते है ऐसे दिन के या दिन रात्रि के पौषध को 'दया' कहते है और रात्रि के पौषध को 'संवर' कहते है।

प्रश्न—आठ प्रहर से कम पौषध करने वाले का और दया रूप पौषध करने वालों का शास्त्रीय उदाहरण दीजिये ?

उत्तर—भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक १ में वर्णित शंख ने आठ प्रहर से कम का उपवास युक्त तिविहार पौषध किया

था तथा पुष्कली आदि ने खाते पीते आठ प्रहर से कम का देश पौषध किया था, जिसे आजकल 'दया' कहते हैं।

प्रश्न—सामायिक और पौषध मे क्या अतर है ?

उत्तर—एक सामायिक केवल एक मुहूर्त (४८ मिनिट) की होती है जबकि पौषध कम से कम भी चार प्रहर का होता है। सामायिक मे निद्रा और आहारादि का त्याग करना ही होता है जबकि पौषध चार या इससे अधिक का होने से उसमे निद्रा भी ली जा सकती है और आहार भी किया जा सकता है। पौषधव्रत, सामायिक व्रत का विशिष्ट रूप है।

प्रश्न—सामायिक व्रत मे निद्रा, आहार, निहार आदि की छूट क्यो नही है ?

उत्तर—सामायिक अल्पकाल की है अत वह इन छूटो के बिना हो सकती है और यदि इनकी छूट सामायिक मे दी जाय तो सामायिक मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधना नही हो सकेगी। पौषध विशेष काल का होने के कारण इन छूटो के बिना सामान्य लोगो को पालन करना कठिन होता है और बिना इन छूटो के सामान्य लोगो की ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना मे समाधि नही रहती।

प्रश्न—पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौषध की भावना जगे, तो सामायिक पाल कर पौषध ले या सीधे ही ?

उत्तर—सामायिक मे पौषध ले सकते हैं, क्योकि सामायिक पाल कर फिर पौषध लेने से बीच मे अव्रत लगता है।

प्रश्न—पौषध का भाव रखने वाला क्या पहले सामायिक

कर सकता है ?

उत्तर—पौषध का भाव रखने वाला पूर्व मे सामायिक ग्रहण करे तो कर सकता है क्योंकि सामायिक में पौषध के दोषो के अतिरिक्त सामायिक के वत्तीस दोष भी टालने होते हैं।

प्रश्न—प्रतिलेखन-प्रमार्जन किसे कहते है ?

उत्तर—मुखवस्त्रिका आदि वस्त्रो में कोई जीव है या नहीं, इस दृष्टि से शीघ्रता आदि न करते हुए उन्हे लगन पूर्वक ध्यान से देखना प्रतिलेखन है तथा जीवादिक के दृष्टि-गोचर होने पर उन्हे कष्ट न हों ऐसी यतना से उन्हें कोमल पूंजनी से या हलके हाथों से एकांत सुरक्षित स्थान में ले जा कर छोड़ना प्रमार्जन है।

प्रश्न—प्रतिलेखन–प्रमार्जन किस क्रम से करना चाहिये।

उत्तर—उभयकाल पहले मुखवस्त्रिका, फिर पूंजनी, फिर वस्त्र, फिर संस्तारक फिर पौषधशाला, फिर मल-मूत्र आदि परठने की भूमि और गोचरी के पात्र हों तो फिर उन पात्रों का प्रतिलेखन करना चाहिये।

प्रश्न—प्रतिलेखन–प्रमार्जन करने पर भी अतिचार लगता है ?

उत्तर—यदि प्रतिलेखन और प्रमार्जन प्रभु आज्ञानुसार विधि पूर्वक और यतना पूर्वक नही किया जाय तो अतिचार लगता है।

प्रश्न—शुद्ध पौषध करने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—शुद्ध पौषध करने के लिए पौपध मे लगने वाले

१८ दोषो से बचना चाहिये।

प्रश्न—पौषध के अठारह दोष कौन कौन से है ?

उत्तर—पौषध करने के पूर्व लगने वाले दोष–१ पौषध के पूव दिन ठूस ठूस कर खाना २ पौषध मे प्रवेश करने के पूव नख, केश आदि की सजाई करना ३ पौषध के पूर्व दिन मैथुन सेवन करना ४ पौषध के विचार से वस्त्रादि धोना धुलवाना ५ पौषध करने के लिए शरीर की स्नानादि शुश्रूषा करना ६ पौषध के निमित्त आभूषण पहनना।

उपरोक्त कार्य पौषध के पूव करने से पौषध दूषित होता है।

पौषध मे लगने वाले दोष—७ अविरत मनुष्य से अपनी सेवा करवाना ८ शरीर का मैल उतारना ९ विना पूजे खाज खुजलाना १० दिन मे और पहर रात गये के पूर्व नीद लेना तथा रात्रि के पिछले प्रहर मे उठ कर धर्म जागरण नही करना ११ विना पूजे परठना १२ निन्दा विकथा करना, हसी ठट्टा करना-कराना १३ सासारिक विषयो की चर्चा करना १४ स्वय डरना या दूसरो को डराना १५ क्लेश करना १६ अयतना से बोलना १७ स्त्री के अगोपाग निरखना, मोहक दृश्य देखना, मोहक राग सुनना, सुगन्ध सूघना आदि १८ सासारिक सबध से किसी को पुकारना।

उपरोक्त दोषो से रहित शुद्ध पौषध करना चाहिये।

१२ अतिथिसंविभाग व्रत

बारहवां अतिथि-सविभाग व्रत–समणे णिग्गथे

फासुयएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थ-पडिग्गह कंबल-पायपुंछणेणं पडिहारिय पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा-परूपणा है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ। एवं बारहवें अतिथिसंविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊँ—सचित्तनिक्खवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरियाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—अतिथि—जिनके आने की तिथि या समय नियत नही हैं, संविभाग—अपने लिए तैयार किये हुए भोजनादि मे से कुछ हिस्सा देना, समणे—श्रमण-साधु, णिग्गंथे—निर्ग्रंथ—पंच महाव्रतधारी, फासुय—प्रासुक (अचित्त) एसणिज्जेणं—एषणीय (उद्गमादि दोष रहित) पडिग्गह—पात्र, कंबल—कम्बल, पायपुंछणेणं—पाद पोंछन (पांव पोंछने का रजोहरण आदि) पडिहारिय—प्रातिहार्य—लौटा देने योग्य, पीढ़-फलग—चौकी, पट्टा, सेज्जासंथारएणं—शय्या के लिए संस्तारक तृण आदि का आसन, ओसह—औषध, भेसज्जेणं—भेषज, पडिलाभेमाणे—वहराता हुआ, विहरामि—रहता हूँ, सचित्तनिक्खेवणया—अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, सचित्तपिहणया—

अचित्त वस्तु सचित्त से ढकी हो, कालाइक्कमे–साधुओ को भिक्षा देने का समय टाल दिया हो, परववएसे–आप सूझता होते हुए भी दूसरो से दान दिलाया हो, मच्छरियाए–मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो।

भावार्थ—म अतिथिसविभाग व्रत का पालन करने के लिये निर्ग्रथ साधुओ को अचित्त, दोष रहित अशन पान खाद्य स्वाद्य आहार का वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद पोंछन, चौकी, पट्टा, शय्या, सस्तारक, औषध-भेषज आदि का साधु साध्वी का योग मिलने पर दान दू तब शुद्ध होऊँ, ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है। यदि मैंने साधु को देने योग्य अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रखा हो, अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढका हो, साधुओ को भिक्षा देने का समय टाल दिया हो, स्वय सूझता होते हुए भी दूसरो से दान दिलाया हो, ईर्ष्या भाव से दान दिया हो तो मै उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—अतिथिसविभाग व्रत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जिनके आने की कोई तिथि या समय नियत नही है ऐसे पच महाव्रतधारी निर्ग्रंथ श्रमणो को उनके कल्प के अनुसार १ अशन २ पान ३ खाद्य ४ स्वाद्य ५ वस्त्र ६ पात्र ७ कम्बल ८ पादपोञ्छन ९ पीठ १० फलक ११ शय्या १२ सस्तारक १३ औषध और १४ भेषज–ये चौदह प्रकार

की वस्तुएँ निष्काम बुद्धि पूर्वक आत्म कल्याण की भावना से देना तथा दान का संयोग न मिलने पर सदा ऐसी भावना रखना अतिथिसंविभाग व्रत है।

प्रश्न—पडिहारी (प्रातिहार्य) अपडिहारी (अप्रतिहार्य) वस्तुएं कौन-कौनसी है ?

उत्तर—जिन वस्तुओं को साधु-साध्वी लेने के बाद वापस नही करते है उन्हे 'अपडिहारी' वस्तुएँ कहते हैं। इसके आठ भेद हैं–१ अशन, २ पान ३ खाद्य ४ स्वाद्य ५ वस्त्र ६ पात्र ७ कम्बल और ८ पाद-पोञ्छन।

जिस वस्तु को साधु-साध्वी अपने उपयोग में लेकर कुछ काल तक रख कर बाद में वापस कर देते है उन्हें 'पडिहारी' (प्रातिहार्य) कहते है। इसके छह भेद है–१ पीठ (चौकी) २ फलक (पट्टा) ३ शय्या (पौषधशाला, घर) ४ संस्तारक (तृण आदि का आसन) ५ औषध और ६ भेषज।

उपरोक्त चौदह प्रकार की अचित्त और दोष रहित वस्तुएँ साधु-साध्वियों को उनकी आवश्यकतानुसार देना, चौदह प्रकार का दान कहलाता है।

प्रश्न—औषध और भेषज में क्या अंतर है ?

उत्तर—सूंठ, हल्दी, आंवला, हरड, लवंग आदि असंयोगी द्रव्य 'औषध' कहे जाते हैं। हिंगाष्टक चूर्ण, त्रिफला आदि संयोगी वस्तुएं 'भेषज' कहलाती है।

प्रश्न—क्या देय वस्तुएं चौदह ही है ?

उत्तर—ये चौदह वस्तुए प्राय काम मे आती है अत इनका उल्लेख किया गया है। इसके अलावा धर्मोपयोगी पुस्तकें, सुई, कैंची आदि भी समझ लेना चाहिये।

प्रश्न—क्या साधु-साध्विया ही दान के पात्र हैं?

उत्तर—साधु साध्विया दान के उत्कृष्ट (उत्तम) पात्र है अत उनका इस बारहवे व्रत मे उल्लेख किया गया है। प्रतिमाधारी श्रावक व्रतधारी श्रावक, और सामान्य स्वधर्मी सम्यक्त्वी भी दान के पात्र है।

प्रश्न—सचित्त णिक्खेवणया (सचित्त निक्षेप) किसे कहते हैं?

उत्तर—साधु को नही देने की बुद्धि से कपट पूर्वक अचित्त वस्तुओ को सचित्त पर रखना 'सचित्त निक्षेप' कहलाता है। जैसे रोटी-पात्र को लवण पात्र पर रखना, धोवन पानी के पात्र को सचित्त जल के घडे पर रखना, खिचडी आदि को चूल्हे पर रखना, मिठाई आदि को हरी पत्तल पर रखना आदि।

प्रश्न—सचित्त पिहणया (सचित्त पिधान) अतिचार क्या है?

उत्तर—साधु को नही देने की बुद्धि से कपट पूर्वक अचित्त अन्नादि को सचित्त फल आदि से ढकना सचित्त पिधान अतिचार है।

प्रश्न—कालाइक्कमे (कालातिक्रम) किसे कहते हैं?

उत्तर—उचित भिक्षा काल का अतिक्रमण करना कालातिक्रम अतिचार है। भोजन के समय द्वार बद रखना, स्वय

घर के वाहर रहना, रात्रि के समय दान की भावना भाना, साधुओं को सडी हुई खराव वस्तुएं देना आदि भी कालातिक्रम अतिचार है ।

प्रश्न---परववएसे (परव्यपदेश) किसे कहते है ?

उत्तर---आहारादि अपना होने पर भी न देने की वुद्धि से उसे दूसरे का वताना परव्यपदेश अतिचार है । कोई दान का उपदेश दे तो उसे कहना–आप दीजिए–यह भी इसी अतिचार में आता है ।

प्रश्न---मच्छरियाए (मत्सरिता) का क्या अर्थ है ?

उत्तर---अमुक पुरुष ने दान दिया है क्या मै उससे कृपण या हीन हूँ ? इस प्रकार ईर्षा भाव से दान देने में प्रवृत्ति करना, विशिष्ट दानी कहलाने के लिए दान देना, दान देकर पछताना, कषाय कलुषित चित्त से साधु को दान देना आदि मत्सरिता अतिचार है ।

प्रश्न---क्या सामायिक, पौषध वाला साधु साध्वी को आहार पानी आदि वहरा सकता है ?

उत्तर---सामायिक पौषध वाला खुले श्रावक से आहारादि वस्तु की याचना करके स्वयं के घर से या दूसरों के घर से साधुओं को वहरा सकता है। स्वयं के पास रहा हुआ उपकरण प्रमार्जनी, वस्त्र, पुस्तक आदि विना किसी की आज्ञा से भी प्रतिलाभित कर सकता है ।

बड़ी सलेखना का पाठ

अह भते अपच्छिम-मारणातिय सलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूजकर, उच्चारपासवण भूमिका पडिलेह कर, गमणागमण पडिक्कम कर, दर्भादिक सथारा सथारा कर, दर्भादिक सथारा दुरूह कर, पूर्व या उत्तर दिशा सम्मुख पल्यकादि आसन से बैठ कर करयल सपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी 'नमोत्थुण अरिहताण भगवताण जाव सपत्ताण' ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार कर के 'नमोत्थुण अरिहताण भगवताण जाव सपाविउकामाण' जयवते वर्त्तमान काले महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार कर के अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हूँ। साधु-प्रमुख चारों तीर्थ को खमा के, सर्व जीव-राशि को खमा के, पहिले जो व्रत आदरे हूं उनमे जो अतिचार दोष लगे हों, वे सर्व आलोच के, पडिक्कम करके, निंद के निःशल्य हो कर के, सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिण्णादाण पच्चक्खामि, सव्व मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्च-

क्खामि, सव्वं कोहं माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणु-जाणामि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे अठारह पापस्थान पच्चक्ख के, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए ऐसे चारों आहार पच्चक्ख के, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, विसासियं, समयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डसमाणं, रयणकरंडगभूयं,मा णं सीयं मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला मा णं चोरा, मा णं दंसमसगा, माणं वाइयं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परिसहा उवसग्गा फासा फुसंतु-एवं पि य णं चरमेहिं उस्सास-णिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु, ऐसे शरीर को वोसिरा के, कालं अणवकंखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा परूपणा तो है, फरसना करूँ तब शुद्ध होऊँ ऐसे अपच्छिम मारणांतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊँ-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्प-

ओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ—अह-अथ, अपच्छिम-अतिम-जिसके पश्चात् और कोई क्रिया करना शेप नही रहता, मारणतिय-(मृत्यु) के समय की जाने वाली, सलेहणा-सलेखना-देह और कपायो को क्षीण करने की क्रिया, झूसणा-सेवन करना, आराहणा-अतकाल तक पालन करना, उच्चारपासवणभूमिका-मल-मूत्र त्यागने की भूमि, पडिलेह-देख करके, दर्भादिक-दर्भ (घास) आदि का, दुरूहकर-आरूढ होकर, करयलसपरिग्गहिय-दोनो हाथ जोड कर, सिरसावत्त-मस्तक से आवतन करने, मत्थए-मस्तक पर, अजलिकट्टु-हाथ जोड कर, नि शल्य-शल्य रहित, करतपि अन्न न समणुजाणमि-दूसरो को करते हुए भला भी नही समझूगा, ज पि य-और भी जो, इम-सरीर-यह शरीर, इट्ठ-इष्ट, कत-काति युक्त, पिय-प्रिय मणुण्ण-मनोज्ञ, मणाम-अत्यत मनोहर, छिज्ज-धैर्यशाली विसासिय-विश्वसनीय, समय-मानने योग्य (माननीय), अणुमय-विशेप सम्मान को प्राप्त, अनुमोदनीय, वहुमय-वहुत माननीय, भण्डकरण्डसमाण-आभूपणो के करण्डिये (करण्ड-डिव्वा) के समान, रयणकरडगभूय-रत्नो के करडिये के समान, मा ण-न हो, सीय-शीत, उण्ह-उष्णता, खुहा-क्षुधा, पिवासा-प्यास, वाला-सर्प का डसना (काटना), चोरा-चोर, दसमसगा-दशमशक-डास मच्छर, वाइय-वात, पित्तिय-पित्त, कप्फिय-

कफ, **संभीमं**–भयंकर, **सण्णिवायं**–सन्निपात, **विविहा**–अनेक प्रकार की, **रोगायंका**–रोगों का आतंक, **परीसहा**–परीषह, **उवसग्गा**–उपसर्ग, **फासा फुसंतु**–स्पर्श करें, संबंध करें, **एवं पिय णं**–ऐसे इस शरीर को भी, **चरमेहिं**–अंतिम, **उस्सास-णिस्सासेहिं**–श्वासोच्छ्वास में, **कालमणवकंखमाणे**–काल की आकांक्षा नही करता हुआ।

भावार्थ—मृत्यु का समय निकट आने पर संलेखना तप करने वाला पहले संथारे का स्थान निश्चित करे। वह स्थान निर्दोष–जीव जंतु और कोलाहल से रहित तथा शांत हो फिर उच्चार प्रस्रवण की भूमि (बडीनीत लघुनीत परठने का स्थान) देख कर निर्धारित करे। इसके बाद संथारे की भूमि का प्रमार्जन करे और उस पर दर्भ आदि का संथारा बिछा कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके बैठे। ईर्यापथिकी–गमनागमन का प्रतिक्रमण करे फिर दोनों हाथ जोड़ कर नमोत्थुणं के पाठ से सिद्ध भगवान् एवं अरिहंत भगवान् की स्तुति करे। इसके बाद गुरुदेव को वंदना करके चतुर्विध तीर्थ से क्षमायाचना करते हुए संसार के सभी प्राणियों से क्षमा-याचना करे। पहले धारण किये हुए व्रतों में जो अतिचार लगे हों उनकी आलोचना और निंदा करे। इसके बाद सर्व हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य रूप अठारह पापों का एवं चारों आहार का त्याग करे तथा संपूर्ण पापजनक योग का तीन करण तीन योग से (मन, वचन, काया से पाप कार्य स्वयं करूंगा नहीं,

कराऊँगा नही और करते हुए को भला भी नही समझूगा) त्याग करे। तत्पश्चात् उत्साह पूवक शरीर त्याग की प्रतिज्ञा करता हुआ कहे कि–मेरा यह शरीर जो मुझे, इप्ट, कात, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, धैर्य देने वाला विश्वसनीय, माननीय, अनुमोदनीय, बहुत माना हुआ, आभूपणो के करडिये के समान रत्न के करडिये के समान सदैव लगता रहा है। मै सदैव यत्न करता रहा कि 'इसे कही शीत न लग जाय, गर्मी न लग जाय, इसे भूख-प्यास न लगे, इसे सर्प न काटे, चोरो का भय न हो, डास मच्छर न काटें, वात, पित्त, कफ आदि के रोग न हो, सन्निपात आदि विविध भयकर रोगो का आतक परीपह उपसग आदि पीडाएँ नही आयें, ऐसे यत्नपूवक पाले-पोपे हुए इस शरीर स अपना ममत्व हटा कर मै इसका त्याग करता हूँ और अतिम श्वासोच्छवास तक इस शरीर से अपनेपन का त्याग करता हूँ और काल की इच्छा नही करता हुआ विचरता हूँ।

ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा है जब अतिम समय आवे तब स्पशना द्वारा शुद्ध होऊँ। अतिम मरण समय सबधी सलेखना के विपय मे कोई दोप लगा हो–मैने राजा चक्रवर्ती आदि के इस लोक सबधी सुख की आकाक्षा की हो, देव, इन्द्र आदि के परलोक सबधी सुख की आकाक्षा की हो, प्रशसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, दुख से व्याकुल हो कर शीघ्र मरने की इच्छा की हो तथा कामभोग की अभिलापा की हो, तो मै उसकी आलोचना

करता हूँ। मेरा वह सब पाप निष्फल हों।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न--मरण किसे कहते हैं? इसके मुख्य कितने भेद है?

उत्तर--आयुष्य पूरी होने पर आत्मा का शरीर से अलग होना अथवा शरीर से प्राणों का निकलना 'मरण' कहलाता है। मरण दो प्रकार का बतलाया है-१ सकाम (पंडित) मरण और २ अकाम (बाल) मरण। ज्ञानी जीवो का मरण सकाम मरण होता है और अज्ञानी जीवों का मरण अकाम मरण या बाल मरण होता है।

प्रश्न--संलेखना किसे कहते है? यह कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर--सम्यक् प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना-कृश करना, संलेखना है। संलेखना दो प्रकार की होती है-१ आभ्यंतर और २ बाह्य। कषायों को कृश करना आभ्यन्तर संलेखना है और शरीर को कृश करना बाह्य संलेखना है।

प्रश्न--अपश्चिम मारणांतिक संलेखना का क्या अर्थ है?

उत्तर--अंतिम मरण के समय शरीर और कषायादि को कृश करने वाला तप विशेष 'अपश्चिम मारणांतिक संलेखना, कहलाती है। उसके प्रीतिपूर्वक सेवन की आराधना अखंड काल तक करना 'अपश्चिम मारणांतिक संलेखना जोषणा आराधना' कहलाती है।

प्रश्न—सागारी संथारा किसे कहते हैं ?

उत्तर—आगार रख कर जो संथारा किया जाता है वह सागारी संथारा कहलाता है । जिन्हें उपसर्ग आदि से बचने की संभावना होती है वे सागारी संथारा करते हैं किंतु जिन्हें बचने की संभावना नहीं हो वे बिना किसी आगार के ही–जीवन पर्यंत के लिए संथारा कर लेते हैं ।

प्रश्न—संथारा कहाँ किया जाता है ?

उत्तर—संथारा उपाश्रय में अथवा घर में–कोलाहल रहित स्थान में रह कर भी किया जा सकता है और वन, पर्वत आदि शांत निर्दोष स्थान में जाकर भी किया जा सकता है ।

प्रश्न—संकटकाल, बीमारी के समय या अन्य किसी परिस्थिति में सागारी संथारा कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—संकटकाल, बीमारी के समय या अन्य किसी भी परिस्थिति में निम्न दोहा बोल कर सागारी संथारा किया जा सकता है—

"आहार शरीर उपधि, पच्चक्खू पाप अठार ।
जब तक मैं बोलूं नहीं, एक बार नवकार ॥"

रात को सोते समय भी उपरोक्त पाठ से संथारा किया जा सकता है ।

प्रश्न—क्या संलेखना, आत्महत्या है ?

उत्तर—संलेखना, आत्महत्या नहीं है । संलेखना का

उद्देश्य आत्मघात करने का नही बल्कि आत्मगुण घातक अव-गुणों के घात करने का है। संलेखना आत्मोत्थान की दृष्टि से की जाती है। यह आत्मशुद्धि और प्रायश्चित्त का महानतम व्रत है। यह घोर तप है और अंतिम घड़ियों में साधनाशील को चिरशांति प्रदान करने का प्रबल साधन है। आत्म-हत्या राग द्वेष एवं मोहवृत्ति से ही होती है। आत्मघात प्रायः लज्जा से, निराशा से, आवेश से किया जाता है। संथारे मे प्राणनाश अवश्य हो जाता है परन्तु वह राग-द्वेष और मोह का कारण नही है। इसी कारण मारणांतिक संलेखना को हिंसा की कोटि मे समाविष्ट नही किया जा सकता। सले-खना मे प्रमाद का अभाव है क्योंकि इसमें रागादिक नही पाये जाते। रागादिक के अभाव के कारण ही सलेखना करने वाले को आत्मघात का दोष नही लगता।

जैसे कोई व्यक्ति समाज सेवा और राष्ट्रसेवा के लिए बलिदान हो जाता है तो हम उसके बलिदान को आत्महत्या नहीं मानते। इसी प्रकार जो व्यक्ति आत्मशुद्धि और आत्मो-त्थान के लिए अपना तन और मन धर्मसाधना हेतु न्यौछावर कर देता है उसके इस महान् त्याग को आत्महत्या कैसे माना जा सकता है ? आत्म हत्या निंदनीय अपराध है, कायरतापूर्ण अधम कार्य है जबकि संलेखना पवित्र, प्रशंसनीय और आत्मो-त्थान का वीरोचित कार्य है। अतः संलेखना–संथारे को आत्म-हत्या मानना भयंकर भूल है।

प्रश्न—संलेखना का क्या महत्त्व है और इसका क्या फल है ?

उत्तर—संलेखना युक्त पंडित मरण करने वाला साधक बार-बार जन्म-मरण नही करता। उत्तराध्ययन सूत्र अ ५ गा ३ म कहा है कि अज्ञानी जीवो के अकाममरण ही बार बार होता है जबकि पंडित पुरुषों का सकाम मरण तो उत्कृष्ट एक ही बार होता है। जो जीव समाधिपूर्वक मरण करते हैं वे उत्तम देव पर्याय को प्राप्त होते हैं। स्वर्गों मे अनुत्तर भोग, भोग कर वे वहा से च्यव कर उत्तम मनुष्य भव मे जन्म धारण कर सपूर्ण ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं तत्पश्चात् जिनधर्म अर्थात् मुनिधर्म व तप आदि का पालन करते हैं। शुक्ललेश्या की प्राप्ति कर वे आराधक शुक्लध्यान से ससार का नाश करते हैं और कर्म रूपी बन्धन को तोड़ कर सपूर्ण क्लेशों का नाश कर मुक्त होते हैं।

पच्चीस मिथ्यात्व का पाठ

१ जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २ अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ३ धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ४ अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ५ साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ६ असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ७ मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग श्रद्धे

तो मिथ्यात्व, ८ संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ९ मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, १० अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ११ आभिग्रहिक मिथ्यात्व, १२ अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व, १३ आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, १४ सांशयिक मिथ्यात्व, १५ अनाभोग मिथ्यात्व, १६ लौकिक मिथ्यात्व, १७ लोकोत्तर मिथ्यात्व, १८ कुप्रावचनिक मिथ्यात्व, १९ जिन धर्म से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २० जिन धर्म से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २१ जिन धर्म से विपरीत श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २२ अक्रिया मिथ्यात्व, २३ अज्ञान मिथ्यात्व, २४ अविनय मिथ्यात्व, २५ आशातना मिथ्यात्व। ऐसे पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व में से किसी मिथ्यात्व का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, **जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।**

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—मोहोदय से तत्त्वार्थ में श्रद्धा नहीं होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—"जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व" क्या है ?

उत्तर—जीव तत्त्व न मानना या जड से उत्पन्न मानना, स्थावरकाय और सम्मूर्च्छिम आदि को जीव नही मानना, अडो एव जलचर जीवो को खाद्य पदार्थ मानकर उनमे जीव नही मानना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व कैसे है ?

उत्तर—जिसमे जीव नही है उसमे जीव मानना। विश्व को भगवद्रूप मानना, सूर्यादि को मूर्ति, चित्रादि को भगवान् मानना, सम्मान देना आदि अजीव को जीव मानने रूप मिथ्यात्व है।

प्रश्न—धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—धर्म को अधर्म समझने का अर्थ है—परम मान्य सर्वज्ञ कथित सूत्रो को मिथ्या समझना, उनको कल्याणकारी नही मानना।

प्रश्न—अधर्म को धर्म समझने का क्या अर्थ है ?

उत्तर—अधर्म को धर्म समझने का अर्थ है—मिथ्या शास्त्रों को सम्यक् शास्त्र मानना। इसमे आगम की अपेक्षा कथन है। राग एव विषय-वासना वर्द्धक ऐसे मिथ्याश्रुतों को ही भगवान् की वाणी समझना, अधर्म को धर्म समझने रूप मिथ्यात्व है।

प्रश्न—साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—जिनकी श्रद्धा प्ररूपणा शुद्ध है जो महाव्रत आदि श्रमण धर्म के पालक हैं ऐसे सुसाधु को कुसाधु समझना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—जो पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति आदि से रहित है जिनकी श्रद्धा प्ररूपणा खोटी है जिसके आचरण सुसाधु जैसे नही है उन्हे लौकिक विशेषता के कारण या साधु वेश देख कर सुसाधु समझना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे है ?

उत्तर—मोक्ष मार्ग–सम्यगज्ञान, सम्यगदर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप की या संवर निर्जरा की अथवा दान, शील, तप, भाव की मखौल (मजाक) उड़ाना, उसे बहुमान्य न समझ कर संसार का हेतु समझना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—संसार मार्ग को मोक्ष मार्ग समझने का क्या अर्थ है ?

उत्तर—संसार मार्ग को मोक्ष मार्ग समझने का अर्थ है–मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान, आचरण आदि को सम्यक् समझना, संसार बढ़ाने वाले लौकिक अनुष्ठानों को (यज्ञादि को) मोक्ष का हेतु समझना।

प्रश्न—मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—मुक्त आत्मा को संसार में लिप्त समझना, अरिहंत-सिद्ध को कर्म मुक्त सुदेव नही मानना मिथ्यात्व है।

प्रश्न—अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे लगता है ?

उत्तर—रागी-द्वेषी को मुक्त समझना–इतर पंथों के देव जो राग-द्वेष से युक्त हैं, अज्ञानवश उन्हे मुक्त समझना

मिथ्यात्व है।

प्रश्न—आभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—तत्त्व की परीक्षा किये बिना ही पक्षपातपूर्वक, किसी तत्त्व को पकड़े रहना और अन्य पक्ष का खंडन करना आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रश्न—अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—झूठा मत स्वीकार कर रखा हो, उसके लिए आग्रह न हो, सही प्ररूपणा करने पर समझ सकता हो, गुण दोष की परीक्षा किए बिना ही सबको बराबर समझता हो वह अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रश्न—आभिनिवेशिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—यथार्थ जानते हुए भी कदाग्रह वश पकड़े हुए असत आग्रह को नही छोडे, सत्य स्वीकार नही करे—ऐसे अतत्त्व में आग्रह को आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न—सांशयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—देव, गुरु, धर्म के विषय मे अथवा तत्त्व के विषय मे शंकाशील होना, सांशयिक मिथ्यात्व है। जिनागमों मे निरूपित तत्त्व, मुक्तात्मा के स्वरूप अथवा जिनेश्वरो की वीतरागता सर्वज्ञतादि मे सदेह करना, आगमों की अमुक बात सत्य है या असत्य—इस प्रकार की शंका करना इस मिथ्यात्व के उदय का परिणाम है।

प्रश्न—सांशयिक मिथ्यात्व से बचने का सरल उपाय क्या है ?

उत्तर—सांशयिक मिथ्यात्व से वचने का एक मात्र उपाय, जिनेश्वर के वचनो में दृढ विश्वास होना है। यदि मन मे "**तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं**"–रूप आस्था दृढी-भूत हो जाय, तो इस मिथ्यात्व से वचना वहुत सरल हो जाता है।

प्रश्न—अनाभोगिक मिथ्यात्व किन जीवों को होता है ?

उत्तर—अनाभोगिक मिथ्यात्व एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी जीवों को तथा ज्ञान विकल जीवों को होता है। अज्ञान के गाढ़ अंधकार में पड़े हुए जीवों को यह मिथ्यात्व लगता है। जिन जीवों को किसी भी प्रकार के मत का पक्ष नही होता और जो धर्म-अधर्म का विचार ही नही कर सकते, वे अना-भोगिक मिथ्यात्वी है।

प्रश्न—लौकिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकोत्तर परम-सत्य को और उसके निमित्त सुदेव, सद्गुरु और सम्यग्धर्म की उपेक्षा करके–लौकिक उपास्य की उपासना करना, 'लौकिक मिथ्यात्व' है। इसके तीन भेद हैं–१ देव विषयक २ गुरु विषयक ३ धर्मगत लौकिक मिथ्यात्व।

प्रश्न—लोकोत्तर मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—लोकोत्तर तीर्थंकर देव आदि से लौकिक वस्तु की मांग करना तथा उन्हें लौकिक वस्तु देने वाले समझना, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को धर्म मानना यह लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

प्रश्न—कुप्रावचनिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—निर्ग्रंथ प्रवचन के अतिरिक्त अन्य कुप्रावचनिक-मिथ्या प्रवचन के प्रवर्तक, प्रचारक और मिथ्या प्रवचन को मानना, कुप्रावचनिक मिथ्यात्व है।

प्रश्न—जिन धर्म से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे लगता है ?

उत्तर—जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित सिद्धात से कुछ भी कम मानना, इसी प्रकार प्ररूपणा तथा फरसना में कमी करना, न्यून करण मिथ्यात्व है।

प्रश्न—जिन धर्म से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे ?

उत्तर—जिन प्रवचन से अधिक मानना मिथ्यात्व है। निर्ग्रंथ प्रवचन की मर्यादा से अधिक प्ररूपणा आदि करने, सैद्धातिक मर्यादा का अतिक्रमण करने, आगम पाठों में वृद्धि करने आदि से यह मिथ्यात्व लगता है।

प्रश्न—विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन मार्ग से विपरीत श्रद्धा-सुदेव, सुगुरु और सुधर्म से विपरीत श्रद्धा प्ररूपणा करना निर्ग्रंथ प्रवचन से विपरीत प्रचार करना, सावद्य एव समारम्भी प्रवृत्ति करना या उसका प्रचार करना, सावद्य प्रवृत्ति में धर्म मानना, विपरीत मिथ्यात्व है।

प्रश्न—अक्रिया मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक् चारित्र की उत्थापना करते हुए एकान्त-वादी बन कर आत्मा को अक्रिय मानना, चारित्रवानों को 'क्रिया जड़' कह कर तिरस्कार करना, अक्रिया मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रश्न—अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—ज्ञान को बंध और पाप का कारण मान कर अज्ञान को श्रेष्ठ मानना। 'ज्ञान व्यर्थ है, जाने वह ताने, भोले का भगवान् है'—इस प्रकार कहना अज्ञान मिथ्यात्व है।

प्रश्न—अविनय मिथ्यात्व क्यों हैं ?

उत्तर—पूजनीय देव, गुरु और धर्म का विनय नही करके अविनय करना उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना अविनय मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व, गुण और गुणीजनों के प्रति अश्रद्धा होने पर उत्पन्न होता है। अश्रद्धा होने से ही अविनय होता है इसलिए अविनय भी मिथ्यात्व है।

प्रश्न—आशातना मिथ्यात्व का क्या अर्थ है ?

उत्तर—आशातना का अर्थ है—विपरीत होना, प्रतिकूल व्यवहार करना, विरोधी हो जाना, निंदा करना। देव, गुरु और धर्म की आशातना करना, इनके प्रति ऐसा व्यवहार करना कि जिससे ज्ञानादि गुणों और ज्ञानियो को ठेस पहुंचे।

प्रश्न—मिथ्यात्व की प्ररूपणा क्यो की गयी है ?

उत्तर—अरिहंत भगवान् ने जो मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है उसका यही उद्देश्य है कि भव्य जीव सुखपूर्वक मोक्ष नगर मे पहुंचे, हिंसादि मय कुमार्ग, हिंसा मिश्रित कुमार्ग या लौकिक सुखप्रद पुण्यमार्ग में भटक न जावें या अन्य इन्हें भटका न दें।

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के स्थान का पाठ

१ उच्चारेसु वा २ पासवणेसु वा ३ खेलेसु वा ४ सिंघाणेसु वा ५ वतेसु वा ६ पित्तेसु वा ७ सोणिएसु वा ८ पुइएसु वा ९ सुक्केसु वा १० सुक्कपुग्गलपरिसाडिएसु वा ११ विगयजीवकलेवरेसु वा १२ इत्थी-पुरिस सजोगेसु वा १३ नगरनिधमणेसु वा १४ सव्वेसु-चेव असुइ-ठाणेसु वा। इन चौदह स्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मूच्छिम मनुष्यो की विराधना की हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

कठिन शब्दार्थ--उच्चारेसु-मनुष्यो की विष्ठा (मल) मे, पासवणेसु-मूत्र मे, खेलेसु-कफ मे, सोणिएसु-नाक के मैल (श्लेष्म) मे, वतेसु-वमन (उल्टी) मे, पित्तेसु-पित्त मे, सोणिएसु-रक्त मे, पूएसु-पीप (राध) मे, सुक्केसु-पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज मे, सुक्क पोग्गल परिसाडिएसु-वीर्य के सूखे हुए पुद्गल पुन गीले होने पर उनमे पैदा होने वाले, इत्थी-पुरिस सजोगेसु-स्त्री पुरुष के सयोग (मैथुन) मे, विगयजीव-कलेवरेसु-जीव रहित मनुष्य के शरीरो मे, नगर निधमणेसु-नगर की नालियो-गटरो मे, सव्वेसु चेव असुइठाणेसु वा-सभी अशुचि स्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मूच्छिम जीव।

भावार्थ--सम्मूच्छिम मनुष्यों के उत्पन्न होने के चौदह स्थान इस प्रकार हैं-१ उच्चार (विष्ठा) २ मूत्र ३ खंखार

४ नाक का मैल (श्लेष्म) ५ वमन ६ पित्त ७ पीप ८ रुधिर ९ वीर्य १० सुखी हुई अशुचि फिर गीली हो जाय उसमें ११ मनुष्य के कलेवर (शव) में १२ स्त्री-पुरुष के संयोग में १३ नगर के खाल में १४ मनुष्य के सभी अशुचि के स्थानों में। इन चौदह स्थानो में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम जीवों की विराधना की हो तो उसका पाप मिथ्या (निष्फल) हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—संमूर्च्छिम मनुष्य किसे कहते है ?

उत्तर—संज्ञी मनुष्यो के मल-मूत्र आदि अशुचि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य संमूर्च्छिम मनुष्य कहलाते हैं। ये विना गर्भ के उत्पन्न होते है।

प्रश्न—क्या संमूर्च्छिम मनुष्य अपने को दिखाई देते है ?

उत्तर—नही, सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपने को दिखाई नहीं देते हैं क्योकि वे इतने सूक्ष्म होते है कि चर्म-चक्षुओं से नही देखे जा सकते।

प्रश्न—'सव्वेसु चेव असुइठाणेसु' से क्या आशय समझना चाहिये ?

उत्तर—तेरह स्थानों के अतिरिक्त और भी अशुचि के स्थान–जो मनुष्यों के संसर्ग से हो, वह अंतिम भेद में गिनना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य, रोटी के टुकड़े को चबा चबा कर किसी भाजन में एकत्रित करे, तो यह भिन्न स्थान हुआ। वैसे ही तेरह स्थानों में से दो, तीन, चार बोल शामिल करने से

जीवो की उत्पत्ति हो तो वह इस अंतिम भेद में गिना जाता है।

तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए तिविहेण पडिक्कतो वदामि जिण चउव्वीस।

कठिन शब्दार्थ-- तस्स-उस, धम्मस्स-धर्म की, केवलिपण्णत्तस्स-केवली प्ररूपित, अब्भुट्ठिओमि-उद्यत होता हूँ, आराहणाए-आराधना के लिए, विरओमि-निवृत्त होता हूँ, विराहणाए-विराधना से, तिविहेणं-तीन योग से, पडिक्कतो-प्रतिक्रमण करता हुआ, जिणचउव्वीस-चौवीस तीर्थंकरो को।

भावार्थ--मैं उस केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उद्यत होता हूँ, विराधना से निवृत्त होता हूँ और मन, वचन और काया द्वारा प्रतिक्रमण करता हुआ चौवीस तीर्थंकरों को वदना करता हूँ।

श्रमण सूत्र के पाठ

शका—श्रमण नाम साधु का है, इसलिये श्रमण सूत्र साधु को ही पढना उचित है या श्रावक को भी ?

समाधान--श्रमण साधु का ही नाम है ऐसा सकुचित अर्थ शास्त्र सम्मत नहीं है। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के बीसवे शतक के आठवे उद्देशक मे कहा है—"तित्थ पुण चाउव्वण्णा-

इण्णे समणसंघे तंजहा—समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ" अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों को श्रमण संघ कहते हैं। यद्यपि व्यवहार में श्रमण, साधु का ही नाम है तथापि भगवान् ने तो चारों तीर्थों को ही श्रमणसंघ के रूप में कहा है। इस आप्त वाक्य को प्रत्येक मुमुक्षु को मानना चाहिए।

शंका—श्रमणसूत्र मे साधु के आचार का ही कथन है, इसलिये साधु को ही पढ़ना उचित है, श्रावक के लिए उसका क्या उपयोग है?

समाधान—श्रावक कृत अनक धर्म क्रियाओं में श्रमणसूत्र के पाठ परम उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए-१ जब श्रावक पौषधव्रत में या संवर में निद्राग्रस्त होते हैं तब निद्रा में लगे हुए दोषों से निवृत्त होने के लिये श्रमण सूत्र का प्रथम पाठ **"इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए"** कहना चाहिये। निद्रा के दोषों से निवृत्त होन का अन्य कोई पाठ नही है।

२ ग्यारहवी पडिमाधारी श्रावक भिक्षोपजीवी ही होते हैं तथा कई स्थानों पर दयाव्रत का पालन करने वाले श्रावक भी गोचरी करते है। उसमें लगे हुए दोषों की निवृत्ति करने के लिए दूसरा पाठ **"पडिक्कमामि गोयरग्गचरियाए"** कहना पड़ता है।

३ श्रावक-श्राविका ने सामायिक, पौषधव्रत में मुंहपत्ति तथा वस्त्र,पूंजनी आदि का प्रतिलेखन नहीं किया हो तो उस दोष की निवृत्ति करने के लिए तीसरा पाठ **'पडिक्कमामि**

चउकाल सज्झायस्स अकरणयाए" कहना चाहिये।

४ चौथे पाठ मे 'एक बोल से लगाकर तेतीस बोल" तक कहे है। वे सब ही ज्ञेय (जानने योग्य) है कुछ हेय (छोडने योग्य) और कुछ उपादेय (स्वीकारने योग्य) है। अत इन बोलो का ज्ञान भी श्रावको के लिये आवश्यक है।

५ पाचवा पाठ "निर्ग्रंथ प्रवचन" (नमो चउवीसाए) का है जिसमे जिन प्रवचन (शास्त्र) की एव जैनमत की महिमा है तथा आठ बोलो मे हेय-उपादेय का कथन है। यह भी श्रावको के लिये परमोपयोगी है।

इस प्रकार श्रमणसूत्र मे एक भी विषय या पाठ ऐसा नही है जा कि श्रावक के लिए अनुपयोगी हो।

शका---श्रावक, श्रमण सूत्र सहित प्रतिक्रमण करते थे या करते हैं, इसका कोइ प्रमाण है क्या ?

समाधान---वारह वर्षों के महादुष्काल से धमस्खलित जैनो के पुनरुद्धारक श्रावक श्रेष्ठ श्री लोकाशाह गुजरात देश के अहमदावाद शहर मे हुए। उस देश मे अर्थात् गुजरात झालावाड, काठियावाड, कच्छ आदि देशो मे छह कोटि एव आठ कोटि वाले सभी श्रावक श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण करते थे एव करते हैं। सनातन जैन साधुमार्गी समाज के पुनरुद्धारक परम पूज्य श्री लवजी ऋपिजी महाराज के तृतीय पाट पर विराजित हुए परम पूज्य श्री कहनाजी ऋपिजी महाराज की सम्प्रदाय मे श्रावक श्रमणसूत्र बोलते हैं। बाईस सम्प्रदाय के मूलाचार्य परम पूज्य श्री धमदासजी महाराज की

सम्प्रदाय के श्रावक श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण करते है।

उपर्युक्त शंका-समाधान से सिद्ध होता है कि **श्रावक को श्रमण सूत्र सहित प्रतिक्रमण करना चाहिए।** श्रमण सूत्र के पाठों के विना श्रावक की क्रिया पूरी तरह शुद्ध नहीं हो सकती है। क्योकि श्रावकों को अवश्य जानने योग्य विषय और आचरण करने योग्य विषय श्रमण सूत्र में है। प्राचीन काल के श्रावक श्रमण सूत्र सहित प्रतिक्रमण करते थे वर्तमान मे भी कुछ श्रावक श्रमण सूत्र सहित प्रतिक्रमण करते हैं और जो श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण नही करते हैं, उन्हें भी करना चाहिये।

१ पगामसिज्जाए का पाठ

(निद्रा दोष निवृत्ति का पाठ)

इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए णिगाम-सिज्जाए संथारा-उव्वट्टणाए परियट्टणाए आउट्टणाए पसारणाए छप्पइय संघट्टणाए कूइए, कक्कराइए, छीए, जंभाइए, आमोसे, ससरक्खामोसे, आउलमाउलाए, सुवणवत्तियाए, इत्थी (पुरिस) विप्परियासियाए, दिट्ठि-विप्परियासियाए, मणविप्परियासियाए, पाणभोयण-विप्परियासियाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ--पगामसिज्जाए-चिरकाल तक सोने

से, णिगामसिज्जाए–बार-बार चिरकाल तक सोने से, उव्वट्टणाए–करवट बदलने से, परियट्टणाए–बार-बार करवट बदलने से, आउट्टणाए–हाथ पैर आदि को सकुचित करने से, पसारणाए–हाथ पैर आदि को फलाने से, छप्पइय–यूका आदि को, सघट्टणाए–स्पर्श करने से, कूइए–खासते हुए, कक्कराइए–शय्या के दोष कहते हुए, छीए–छीक्ते हुए, जभाइए–उवासी लेते हुए, आमोसे–विना पूजे स्पर्श करते हुए, ससरक्खामोसे–सचित्त रज मे युक्त वस्तु को छूते हुए, आउलमाउलाए–आकुल व्याकुलता से, सुवणवत्तियाए–स्वप्न के निमित्त से, इत्थीविप्परियासियाए–स्त्री सबधी विपर्यास से, दिट्ठीविप्परियासियाए–दृष्टि के विपर्यास से, मणविप्परियासियाए–मन के विपर्यास से, पाणभोयण विप्परियासियाए–पानी और भोजन के विपर्यास से।

भावार्थ––शयन सबधी प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। शयनकाल मे यदि बहुत देर तक सोता रहा हूँ अथवा बार-बार बहुत देर तक सोता रहा हूँ, अयतना के साथ एक बार करवट ली हो, अथवा बार-बार करवट ली हो, हाथ पैर आदि अग अयतना से समेटे हो अथवा पसारे हो, यूका–जू आदि जीवो को कठोर स्पर्श के द्वारा पीडा पहुँचाई हो, विना यतना के अथवा जोर से खासी ली हो अथवा शब्द किया हो, यह शय्या बडी विषम तथा कठोर है–इत्यादि शय्या के दोष कहे हो, विना यतना किए छीक व जभाई ली हो, विना प्रमार्जन किए शरीर को खुजलाया हो अथवा अन्य किसी वस्तु को

छूआ हो, सचित्त रज वाली वस्तु का स्पर्श किया हो, स्वप्न मे विवाह युद्धादि के अवलोकन से आकुल व्याकुलता रही हो—स्वप्न में मन भ्रान्त हुआ हो, स्वप्न में स्त्री संग किया हो, स्वप्न में स्त्री को अनुराग भरी दृष्टि से देखा हो, स्वप्न में मन में विकार आया हो, स्वप्न दशा में रात्रि मे भोजन-पान की इच्छा की हो या भोजन-पान किया हो अर्थात् मैंने दिन मे जो भी शयन संबधी अतिचार किया हो, वह सब पाप मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—इसे निद्रा दोष निवृति का पाठ क्यो कहते है ?

उत्तर—यह पाठ शयन संबंधी अतिचारो का प्रतिक्रमण करने के लिए है। सोते समय जो भी शारीरिक, वाचिक एव मानसिक भूल हुई हो, संयम की सीमा से बाहर अतिक्रमण हुआ हो, किसी भी तरह का विपर्यास हुआ हो, उन सब के लिए पश्चात्ताप करने का, मिच्छामि दुक्कडं देने का विधान प्रस्तुत पाठ में किया गया है अतः इसे निद्रा दोष निवृत्ति का पाठ कहा जाता है।

प्रश्न—विपर्यास का क्या अर्थ है ?

उत्तर—किसी भी प्रकार की सयम विरुद्ध वृत्ति या प्रवृत्ति विपर्यास है। मन मे विकार भाव आना 'मनोविपर्यास' एवं रात्रि में भोजन पानी की इच्छा 'पान भोजन विपर्यास' है।

प्रश्न—निद्रा दोष निवृत्ति पाठ कब बोलना चाहिये ?

उत्तर—सायकाल, प्रातःकाल प्रतिक्रमण मे बोलने के अलावा जब भी साधक सो कर उठे, उसे निद्रा दोष निवृत्ति का यह पाठ अवश्य बोलना चाहिये ।

२ गोयरग्गचरियाए का पाठ ।

(भिक्षा दोष निवृत्ति का पाठ)

पडिक्कमामि गोयरग्गचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवाड-उग्घाडणाए, साणा-वच्छा-दारा सघट्ट-णाए, मडिपाहुडियाए, बलिपाहुडियाए, ठवणापाहुडि-याए, सकिए, सहसागारे, अणेसणाए, पाणभोयणाए, बीयभोयणाए, हरियभोयणाए, पच्छाकम्मियाए, पुरे-कम्मियाए, अदिट्ठहडाए, दगससट्ठहडाए, रयससट्ठहडाए, परिसाडणियाए परिट्ठावणियाए, ओहासणभिक्खाए, ज उग्गमेण उप्पायणेसणाए, अपरिसुद्ध परिग्गहिय परि-भुत्त वा ज न परिट्ठविय जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

कठिन शब्दार्थ—गोयरग्गचरियाए—गोचर-चर्या मे, भिक्खायरियाए—भिक्षाचर्या मे, उग्घाड—अधखुले, कवाड—किवाडो को, उग्घाडणाए—खोलने से, साणा—कुत्ते, वच्छा—बछडे, दारा—बच्चो का, सघट्टणाए—सघट्टा करने से, लाघने से, मडी—अग्रपिण्ड की, पाहुडियाए—भिक्षा से, बलि—बलिकर्म की, ठवणा—स्थापना की, सकिए—शकित आहार लेने

से, सहसागारे–शीघ्रता मे लेने मे, विचार किये विना ही आहार लेने पर, अणेसणाए–विना एषणा के लेने मे, **पाणभोयणाए**–प्राणी वाले भोजन से, **वीयभोयणाए**–बीज वाले भोजन से, **हरियभोयणाए**–हरित वाले भोजन से, **पच्छाकम्मियाए**–पश्चात् कर्म से, **पुरेकम्मियाए**–पुरः कर्म मे, **अदिट्ठं**–अदृष्ट वस्तु के, **हडाए**–लेने से, **दगसंसट्ठ**–जल से संसृष्ट, **रयसंसट्ठं**–रज से संसृष्ट, **परिसाडणियाए**–पारिशाटनिका से, **परिट्ठावणियाए**–पारिष्ठापनिका से, **ओहासण**–उत्तम वस्तु मांग कर, **भिक्खाए**–भिक्षा लेने से, **उग्गमेणं**–आधाकर्मादि उद्गम दोपों से, **उप्पायण**–उत्पादन दोपो से, **एषणाए**–एपणा के दोषों से, **अपरिसुद्धं**–अशुद्ध आहार, **परिग्गहियं**–ग्रहण किया हो, **परिभुत्तं**–भोगा हो, **परिट्ठवियं**–परठा हो।

भावार्थ–गोचर चर्या रूप भिक्षाचर्या मे, यदि ज्ञात अथवा अज्ञात किसी भी रूप में जो भी अतिचार-दोष लगा हो, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

अधखुले किवाड़ों को खोलना, कुत्ते, बछड़े और बच्चों का संघट्टा–स्पर्श करना, मण्डी प्राभृतिका–अग्रपिण्ड लेना, वलिप्राभृतिका–वलि कर्मार्थ तैयार किया हुआ भोजन लेना, स्थापनाप्राभृतिका–भिक्षुओ को देने के उद्देश्य से अलग रखा हुआ भोजन लेना, शंकित–आधाकर्मादि दोष की शंका वाला भोजन लेना, सहसाकार–शीघ्रता में आहार लेना, विना एषणा छानवीन किए लेना, प्राण-भोजन–जिसमें कोई जीव पड़ा हो

ऐसा भोजन लेना, बीज-भोजन–बीजो वाला भोजन लेना, हरित–भोजन सचित्त वनस्पति वाला भोजन लेना, पश्चात्कम, पुर कम, अदृष्टाहृत–बिना देखा भोजन लेना, उदकससृष्टाहृत–सचित्त जल के साथ स्पशवाली वस्तु लेना, रज ससृष्टाहृत--सचित्त रज से स्पृष्ट वस्तु लेना, पारिशाटनिका–देते समय मार्ग मे गिरता–बिखरता हुआ दिया जाने वाला भोजन लेना, पारिष्ठापनिका–आहार देने के पात्र मे पहले से रहे हुए किसी भाजन को डाल कर दिया जाने वाला अन्य भोजन लेना, बिना कारण विशिष्ट पदाथ माग कर लेना, उद्‌गम–आधाकर्म आदि उद्‌गम के दोपो से सहित भोजन लेना, उत्पादन–धात्री आदि साधु की तरफ से लगने वाले दोपो से सहित भोजन लेना, एपणा–ग्रहणैपणा के शका आदि दस दोपो से सहित भोजन लेना।

उपर्युक्त दोपो वाला अशुद्ध–साधु मर्यादा की दृष्टि से अयुक्त आहार पानी ग्रहण किया हो, ग्रहण किया हुआ भोग लिया हो किंतु दूपित जानकर भी परठा न हो तो तज्जन्य समस्त पाप मिथ्या हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—गोयरग्गचरियाए का पाठ (भिक्षा निवृत्ति दोप का पाठ) श्रावको को बोलना क्यो आवश्यक है ?

उत्तर—गोचरी की दया आदि मे लगे दोप गोयरग्गचरियाए के पाठ से शुद्ध होते हैं तथा प्रतिमाधारी श्रावको

को भिक्षाचर्या में लगे हुए दोपो के निवारण के लिए यह पाठ उपयोगी है और अन्य श्रावको के लिए भिक्षाचर्या तप की श्रद्धा प्ररूपणा में लगे हुए दोपों के निवारण के लिये भिक्षा दोप निवृत्ति का यह पाठ बोलना आवश्यक है।

प्रश्न—गोचरी (गोचरचर्या) किसे कहते है ?

उत्तर—जिस प्रकार गाय वन मे एक-एक घास का तिनका जड़ से न उखाड़ कर ऊपर से ही खाती हुई घूमती है। अपनी क्षुधा निवृत्ति कर लेती है और गोचर भूमि एवं वन की हरियाली को भी नष्ट नही करती है उसी प्रकार मुनि भी किसी गृहस्थ को पीड़ा नही देता हुआ थोड़ा-थोड़ा आहार सभी के यहां से ग्रहण कर अपनी क्षुधा पूर्ति करता है। गाय के समान मुनि की इस चर्या को 'गोचरी' कहते हैं। दशवैकालिक सूत्र अध्ययन १ में इसके लिए मधुकर—भ्रमर की उपमा दी है। भ्रमर भी फूलों को कुछ भी हानि पहुँचाए विना थोड़ा-थोड़ा रस ग्रहण कर आत्म तृप्ति कर लेता है।

प्रश्न—मंडीपाहुडियाए (मण्डी प्राभृतिका) दोष क्या है ?

उत्तर—तैयार किए हुए भोजन के कुछ अग्र अंश को पुण्यार्थ किसी पात्र में निकाल कर अलग रख दिया जाता है, जिसे अग्रपिण्ड कहते है। ऐसे अग्रपिण्ड को भिक्षा में ग्रहण करना 'मण्डी प्राभृतिका' कहलाता है। यह पुण्यार्थ होने से साधु के लिए निषिद्ध है। अथवा साधु के आने पर पहले अग्र भोजन दूसरे पात्र मे निकाल ले और फिर शेष में से दे तो वह भी मंडीप्राभृतिका दोष है, क्योंकि इसमें प्रवृत्ति दोष

लगता है ।

प्रश्न–'बलिपाहुडियाए' (बलि प्राभृतिका) किसे कहते है ?

उत्तर—देवता आदि के लिए पूजार्थ तैयार किया हुआ भोजन 'बलि' कहलाता है। वह भिक्षा मे ग्रहण नही करना चाहिये । यदि ग्रहण करे तो दोष लगता है । अथवा साधु को दान देने से पहले दाता द्वारा सर्वप्रथम आवश्यक बलिकर्म करने के लिए बलि को चारो दिशाओ मे फेंक कर अथवा अग्नि मे डाल कर उसके बाद जो भिक्षा दी जाती है, वह 'बलि प्राभृतिका' है। ऐसा करने से साधु के निमित्त से अग्नि आदि जीवों की विराधना का दोष होता है ।

प्रश्न—'ठवणा पाहुडियाए' (स्थापना प्राभृतिका) दोष कैसे लगता है ?

उत्तर—साधु के उद्देश्य से पहले से रखा हुआ भोजन लेना, स्थापना प्राभृतिका दोष है । अथवा अन्य भिक्षुओ के लिए अलग निकाल कर रखे हुए भोजन मे से भिक्षा लेने मे स्थापना प्राभृतिका दोष लगता है ।

प्रश्न—पश्चात्कर्म दोष क्या है ?

उत्तर—साधु-साध्वी को आहार देने के बाद तदर्थ सचित्त जल से हाथ या पात्रो को धोने के कारण लगने वाला दोष पश्चात् कर्म कहलाता है ।

प्रश्न—पुर कर्म किसे कहते है ?

उत्तर—साधु-साध्वी का आहार देने से पहले सचित्त जल से हाथ या पात्र के धोने से लगने वाला दोष 'पुर कर्म'

कहलाता है।

प्रश्न—'अदिट्ठहडाए' (अदृष्टाहृत) दोष क्या है ?

उत्तर—अदृष्ट–दिखाई नही देने वाले (दूर या अंधेरे) स्थान मे लाया हुआ आहार लेने से यह दोष लगता है। गृहस्थ के घर पर पहुंच कर, साधु को जो भी वस्तु लेनी हो, वह स्वयं जहां रखी हो, अपनी आखों से देख कर लेनी चाहिये। यदि कोठे आदि मे रखी हुई वस्तु, विना देखे ही गृहस्थ के द्वारा लाई हुई ले ली जाती है तो वह 'अदृष्टाहृत' दोष से दूषित होने के कारण अग्राह्य होती है। देय वस्तु न मालूम किस सचित्त वस्तु आदि पर रखी हो, संघट्टे से युक्त हो, अतः उसके लेने में जीव विराधना दोष लगता है।

३ चाउक्काल सज्झायस्स का पाठ

(स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोष निवृत्ति का पाठ)

पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए उभओ कालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए, दुप्पडिलेहणाए, अप्पमज्जणाए, दुप्पमज्जणाए, अइक्कमे, वइक्कमे, अइयारे,अणायारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—**चाउक्कालं**—चार काल में, **सज्झायस्स**—स्वाध्याय के, **अकरणयाए**—न करने से, **उभओकालं**—दोनों काल में, **भडोवगरणस्स**—भाण्ड तथा उपकरण की,

पडिलेहणाए–अप्रतिलेखना से, दुप्पडिलेहणाए–दुष्प्रतिलेखना
, अप्पमज्जणाए–अप्रमार्जना से, दुप्पमज्जणाए–दुष्प्रमार्जना
, अइक्कमे–अतिक्रम मे, वइक्कमे–व्यतिक्रम मे, अइयारे–
तिचार मे , अणायारे–अनाचार मे ।

भावार्थ—स्वाध्याय तथा प्रतिलेखना सबधी प्रतिक्रमण
करता हू । यदि प्रमादवश दिन और रात्रि के प्रथम तथा
अतिम प्रहर रूप चार काल मे स्वाध्याय न की हो, प्रात
तथा सध्या दोनो काल मे वस्त्र, पात्र आदि भाण्डोपकरण की
प्रतिलेखना न की हो या अच्छी तरह प्रतिलेखना न की हो
प्रमार्जना न की हो या अच्छी तरह प्रमार्जना न की हो,
फलस्वरूप अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार सबधी
जो भी दिवस सबधी अतिचार–दोष लगा हो तो वह सब
पाप मेरे लिए मिथ्या–निष्फल हो ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वाध्याय शब्द के अनेक अर्थ है–१ सु+अध्याय
अर्थात् सुष्ठु अध्याय–अध्ययन का नाम स्वाध्याय है । निष्कर्ष
यह है कि–आत्मकल्याणकारी श्रेष्ठ पठन-पाठन रूप अध्ययन
का नाम ही स्वाध्याय है ।

२ स्वाध्याय का अर्थ है–सुष्ठु=भलीभाति आ=मर्यादा
के साथ अध्ययन करने का नाम स्वाध्याय है ।

३ स्वाध्याय यानी अपने आपका अध्ययन करना और

देखभाल करते रहना कि अपना जीवन कैसा उठ रहा है या नही ?

प्रश्न—स्वाध्याय के कितने भेद है ?

उत्तर—स्वाध्याय के पांच भेद वतलाए गए है—

१ वाचना–गुरुमुख से सूत्र पाठ ले कर, जैसा हो वैसा ही उच्चारण करना, वाचना है।

२ पृच्छना–सूत्र पर जितना भी अपने से हो सके तर्क-वितर्क चितन मनन करना चाहिए और ऐसा करते हुए जहां भी शका हो गुरुदेव से समाधान के लिए पूछना, पृच्छना है। हृदय मे उत्पन्न हुई शका को शंका के रूप मे ही रखना ठीक नही होता।

३ परिवर्तना–सूत्र–वाचना विस्मृत न हो जाय इसलिये सूत्र पाठ को वार-वार गुणनिका–परिवर्तना करना, फेरना परिवर्तना है।

४ अनुप्रेक्षा–सूत्र वाचना के संवंध में तात्विक चितन करना, अनुप्रेक्षा है। अनुप्रेक्षा, स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण अंग है।

५ धर्मकथा–सूत्र-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना और अनु-प्रेक्षा के वाद जव तत्त्व का वास्तविक स्वरूप समझ मे आ जाय, तव धर्मोपदेश देना, धर्मकथा है।

प्रश्न—स्वाध्याय से क्या लाभ है ?

उत्तर—वारह प्रकार के तप मे स्वाध्याय अंतरंग तप है। स्वाध्याय का फल वताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २९ में प्रभु ने फरमाया है कि–"**सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं**

''–स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है
का अलौकिक पकाश जगमगा उठता है। स्वाध्याय के
ही हित और अहित का ज्ञान होता है, पाप पुण्य का
चलता है, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान होता है। स्वाध्याय
रा ही धर्म, अधर्म का पता लगा सकते हैं और अधर्म
त्याग कर धर्म मे प्रवृत्ति करते हुए अपने जीवन को सुखी
ा सकते हैं।

प्रश्न––प्रतिलेखना और प्रमार्जना क्यो आवश्यक है ?

उत्तर––वस्त्र पात्र आदि को अच्छी तरह खोल कर
ारो ओर से देखना प्रतिलेखना है और रजोहरण तथा पूजणी
द्वारा अच्छी तरह साफ करना प्रमार्जना है।

साधक के पास जो वस्त्र, पात्र आदि उपधि हो, उसकी
दन मे दो बार–प्रात और साय–प्रतिलेखना करनी होती है।
उपधि को बिना देखे-भाले उपयोग मे लाने से हिंसा का दोष
लगता है। उपधि मे सूक्ष्म जीवो के उत्पन्न हो जाने की अथवा
बाहर के जीवो के आश्रय लेने की संभावना रहती है अत
ाक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए जीवो को देखना
हिए और यदि कोई जीव दृष्टिगत हो तो उसे प्रमार्जन के
किसी भी प्रकार की पीडा पहुचाए बिना एकान्त स्थान
मे छोड देना चाहिये। यह अहिंसा महाव्रत की सूक्ष्म
। है। धर्म की प्रति जागरुकता है अत प्रतिलेखना और
आवश्यक है।

प्रश्न––दुष्प्रतिलेखना और दुष्प्रमार्जन का क्या अर्थ है ?

उत्तर—आलस्यवश शीघ्रता में अविधि से देखना, दुष्प्रतिलेखना है और शीघ्रता मे विना विधि से उपयोगहीन दशा में प्रमार्जन करना, दुष्प्रमार्जन है।

प्रश्न—स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोप निवृत्ति का पाठ बोलना क्यो आवश्यक है ?

उत्तर—शास्त्रोक्त समय पर स्वाध्याय या प्रतिलेखना न करना, शास्त्र निपिद्ध समय पर करना, स्वाध्याय एवं प्रति-लेखना पर श्रद्धा न करना तथा इस संबंध में मिथ्या प्ररूपणा करना या उचित विधि से न करना, इत्यादि रूप मे स्वाध्याय और प्रतिलेखना संबंधी जो अतिचार-दोष लगे हो, उनसे मुक्त होने के लिये स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोप निवृत्ति पाठ बोलना आवश्यक है।

४ तेंतीस बोल का पाठ

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे, पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं राग बंधणेणं दोस बंधणेणं। पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं मणदंडेणं वयदंडेणं कायदंडेणं। पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं मणगुत्तीए, वयगुत्तीए, कायगुत्तीए। पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं, मायासल्लेणं णियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं। पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं इड्ढी-गारवेणं रसगारवेणं सायागारवेणं। पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं णाण-विराहणाए दंसण-विराहणाए चरित्त-

विराहणाए। पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं कोह-कसाएण माणकसाएण मायाकसाएण लोहकसाएण। पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए। पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं इत्थीकहाए भत्तकहाए देसकहाए रायकहाए। पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं, अट्टेण झाणेणं रुद्देण झाणेणं धम्मेण झाणेण सुक्केण झाणेणं। पडिक्कमामि पचहिं किरियाहिं काइयाए अहिगरणिआए पाउसियाए पारितावणियाए पाणाइवाइयाए, पडिक्कमामि पचहिं कामगुणेहिं सद्देण रूवेण गंधेण रसेण फासेण। पडिक्कमामि पचहिं महव्वएहिं सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिण्णा-दाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण, पडिक्कमामि पचहिं समिइहिं इरियासमिइए, भासासमिइए, एसणासमिइए, आयाण-भडमत्तणिक्खेवणासमिइए, उच्चार-पासवण खेलजल्ल-सिंघाण परिट्ठावणिया समिइए। पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं किण्हलेसाए णीललेसाए काउलेसाए तेउलेसाए पम्हलेसाए सुक्कलेसाए। सत्तहिं भयट्ठाणेहिं इहलोग-भए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवियाभए

असिलोगभए मरणभए। अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं जाइमए, कुलमए, बलमए, रुवमए, तवमए, सुयमए, लाभमए इस्सरियमए। नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं [पहलीवाड—ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री (ब्रह्मचारिणी स्त्री-पुरुष,) पशु पंडग रहित स्थान मे रहे, सहित स्थान में नहीं रहे, रहे तो चूहे को बिल्ली का दृष्टांत। दूसरी वाड—ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री की कथा करे कहीं, करे तो जीभ को नींबू और इमली का दृष्टांत। तीसरी वाड—ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं, बैठे तो आटे को कोले का दृष्टांत, घी के घड़े को अग्नि का दृष्टांत। चौथी वाड़—ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अंगोपांग का निरीक्षण करे नहीं, करे तो कच्ची आंख को सूर्य का दृष्टांत। पांचवीं वाड—ब्रह्मचारी पुरुष टाटी भींत आदि के अंतर से स्त्री-पुरुष के विषय विकारी शब्द सुने नहीं, सुने तो मयूर को मेघध्वनि का दृष्टांत। छठी वाड़—ब्रह्मचारी पुरुष पहले के काम-भोगो का चिंतन करे नहीं, करे तो जिनरक्षित को रत्नादेवी का तथा परदेशी को छाछ का दृष्टांत। सातवीं वाड—ब्रह्मचारी पुरुष प्रतिदिन सरस आहार करे नहीं, करे तो सन्निपात के रोगी को दूध और मिश्री का दृष्टांत तथा राजा को आम का दृष्टांत। आठवीं वाड—ब्रह्मचारी पुरुष सरस-नीरस आहार मर्यादा उपरांत करे नहीं, करे तो सेर की हांडी में सवा सेर का दृष्टांत। नववीं वाड़—ब्रह्मचारी पुरुष शरीर की शुश्रूषा-विभूषा करे नहीं, करे तो रंक के हाथ में रत्न का

दृष्टांत।]

दसविहे समणधम्मे, एगारसहिं उवासगपडिमाहिं वारसहिं भिक्खुपडिमाहिं, तेरसहि किरियाठाणेहिं, चोद्दसहि भूयग्गामेहिं, पण्णरसहिं परमाहम्मिएहिं, सोलसहि गाहासोलसएहिं, सत्तरसविहे असजमे, अट्ठारसविहे अबभे एगूणवीसाए णायज्झयणेहिं, वीसाए असमाहिठाणेहिं एगवीसाए सवलेहिं, बावीसाए परिसहेहिं, तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं, चोवीसाए देवेहिं, पणवीसाए भावणाहिं, छव्वीसाए दसाकप्पववहाराण उद्देसण-कालेहिं, सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं एगूणतीसाए पावसुयप्पसगेहि तीसाए महामोहणीयठाणेहिं एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं बत्तीसाए जोगसगहेहिं तेत्तीसाए आसायणाहि–१ अरिहताण आसायणाए २ सिद्धाण आसायणाए ३ आयरियाण आसायणाए ४ उवज्झायाण आसायणाए ५ साहूण आसायणाए ६ साहूणीण आसायणाए ७ सावयाण आसायणाए ८ सावियाण आसायणाए ९ देवाण आसायणाए १० देवीण आसायणाए ११ इहलोगस्स आसायणाए १२ परलोगस्स आसायणाए १३ केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स आसायणाए १४ सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए १५ सव्वपाणभूयजीवसत्ताण आसायणाए १६ कालस्स आसायणाए १७ सुयस्स आसा-

याणाए १८ सुयदेवयाए आसायणाए १९ वायणाय-रियस्स आसायणाए २० जं वाइद्धं २१ वच्चामेलियं २२ हीणक्खरं २३ अच्चक्खरं २४ पयहीणं २५ विणय-हीणं २६ जोगहीणं २७ घोसहीणं २८ सुट्ठुदिण्णं २९ दुट्ठुपडिच्छियं ३० अकाले कओ सज्झाओ ३१ काले न कओ सज्झाओ ३२ असज्झाइए सज्झाइयं ३३ सज्झा-इए न सज्झाइयं। इन तेतीस बोल में जानने योग्य को नहीं जाने हों, छोड़ने योग्य को नहीं छोड़े हों और आदरने योग्य को नहीं आदरे हों, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। जिन महापुरुषों ने जानने योग्य जाने हों, छोड़ने योग्य छोड़े हों और आदरने योग्य आदरे हों, उनकी अविनय आशातना की हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कठिन शब्दार्थ—एगविहे—एक प्रकार के, **असंजमे**—असंयम से, **दोहिं**—दोनों, **बंधणेहिं**—बंधनों से, **रागबंधणेणं**—राग के बंधन से, **दोस बंधणेणं**—द्वेष के बंधन से, **तिहिं**—तीनों, **दंडेहिं**—दण्डों से, **मणदंडेणं**—मन दण्ड से, **वयदंडेणं**—वचन दण्ड से, **कायदंडेणं**—कायदण्ड से, **गुत्तीहिं**—गुप्तियों से, **मणगुत्तीए**—मनोगुप्ति से, **वयगुत्तीए**—वचनगुप्ति से, **कायगुत्तीए**—काय गुप्ति से, **सल्लेहिं**—शल्यों से, **मायासल्लेणं**—माया के शल्य से, **णियाणसल्लेणं**—निदान के शल्य से, **मिच्छादंसणसल्लेणं**—मिथ्या-

दर्शन के शल्य से, गारवेहिं–गौरवो से, इड्ढीगारवेण–ऋद्धि गौरव से, रसगारवेण–रस गौरव से, सायागारवेण–साता गौरव से, विराहणाहिं–विराधनाओ से, नाणविराहणाए–ज्ञान की विराधना से, दसण विराहणाए–दर्शन की विराधना से, चरित्त विराहणाए–चारित्र की विराधना से, कसाएण–कषाय से, सन्नाहिं–सज्ञाओ से, विकहाहिं–विकथाओ से, अट्टेणं झाणेण–आर्तध्यान से, रुद्देणं झाणेण–रौद्रध्यान से, धम्मेण झाणेण–धर्मध्यान से, सुक्केण झाणेण–शुक्लध्यान से, किरियाहिं–क्रियाओ से, काइआए–कायिकी से, अहिगरणियाए–आधिकरणिकी से, पाउसियाए–प्राद्वेषिकी से, पारितावणियाए–पारितापनिकी से, पाणाइवाइयाए–प्राणातिपात क्रिया से, पर्चाहिं–पाँचो, कामगुणेहिं–कामगुणो से, सद्देण–शब्द से, रूवेण–रूप से, गंधेण–गध से, रसेण–रस से, फासेण–स्पर्श से, महव्वएहिं–महाव्रतो से, सव्वाओ–सब प्रकार के, इरिया–ईर्या, समिईए–समिति से, भासा–भाषा, एसणा–एषणा, आयाण–आदान, भडमत्त–भाण्डमात्र, निक्खेवणा–निक्षेपणा, उच्चार–मल, पासवण–प्रस्रवण, मूत्र, खेल–कफ, जल्ल–शरीर का मल, सिंघाण–नाक का मल, परिट्ठावणिया–इनको परठने की, छहिं–छहों, जीवनिकाएहिं–जीव निकायो से, किण्हलेसाए–कृष्णलेश्या से, नीललेसाए–नीललेश्या से, काउलेसाए–कापोतलेश्या से, तेउलेसाए–तेजोलेश्या से, पम्हलेसाए–पद्मलेश्या से, सुक्कलेसाए–शुक्ललेश्या से, सत्तहिं–सात, भयट्ठाणेहिं–भय के स्थानो से, अट्ठहिं–आठ, मयट्ठाणेहिं–मद के स्थानो से, नवहिं–नौ,

बंभचेरगुत्तीहिं—ब्रह्मचर्य की गुप्तियो से, दसविहे—दस प्रकार के, समणधम्मे—श्रमणधर्म में, एक्कारसहिं—ग्यारह, उवासग—श्रावक की, पडिमाहिं—प्रतिमाओ से, वारसहिं—वारह, भिक्खु—भिक्षु की, तेरसहिं—तेरह, किरियाट्ठाणेहिं—क्रिया के स्थानों मे, चउद्दसहिं—चौदह, भूयग्गामेहिं—जीव समूहो से, पण्णरसहिं—पन्द्रह, परमाहम्मिएहिं—परमाधार्मिको से, सोलसहिं—सोलह, गाहासोलसएहिं—गाथा षोडशकों मे, सत्तरसविहे—सत्तरह प्रकार के, अट्ठारसविहे—अठारह प्रकार के, अबंभे—अब्रह्मचर्य मे, एगूणवीसाए—उन्नीस, नायज्झयणेहिं—ज्ञाता सूत्र के अध्ययनों से, वीसाए—वीस, असमाहि—असमाधि से, इक्कवीसाए—इक्कीस, सवलेहिं—शवल दोषों से, वावीसाए—वाईस, परीसहेहिं—परीषहों से, तेवीसाए—तेईस, सूयगडज्झयणेहिं—सूत्रकृतांग के अध्ययनों मे, चउवीसाए—चौवीस, देवेहिं—देवों से, पणवीसाए—पच्चीस, भावणाहिं—भावनाओं से, छव्वीसाए—छब्बीस, दसा—दशा श्रुतस्कंध सूत्र, कप्प—वृहत्कल्प सूत्र, ववहाराणं—व्यवहार सूत्र के, उद्देसणकालेहिं—उद्देशनकालो से, सत्तावीसाए—सत्ताईस अणगारगुणेहिं—साधु के गुणों से, अट्ठावीसाए—अट्ठाईस, आयारप्पकप्पेहिं—आचारप्रकल्पों से, एगूणतीसाए—उनतीस, पावसुयप्पसंगेहिं—पापश्रुत के प्रसगों से, एगतीसाए—इकतीस, सिद्धाइगुणेहिं—सिद्धो के गुणो से, बत्तीसाए—बत्तीस, जोगसंगहेहिं—योग संग्रहो से, तेत्तीसाए—तेत्तीस, आसायणाहिं—आशातनाओं से, सदेवमणुयासुरस्सलोगस्स—देव, मनुष्य असुर सहित लोक की, सत्ताणं—सत्त्वों की, सुयदेवयाए—श्रुत देवता की, वायणा-

परियस्स–वाचनाचार्य की।

भावार्य—एक प्रकार के असयम से निवृत्त होता हूँ। दो प्रकार के वधनो से–राग वधन और द्वेप वधन से लगे दोपो का प्रतिक्रमण करता हूँ। तीन प्रकार के दण्डो (मनोदण्ड, वचन दण्ड कायदण्ड,) से, तीन प्रकार की गुप्तियो (मनोगुप्ति, वचन-गुप्ति, काय गुप्ति) मे और तीन प्रकार के शल्यो (मायाशल्य निदानशल्य और मिथ्यादशन शल्य) से लगे दापो का प्रतिक्रमण करता हूँ। तीन प्रकार के गौरव (ऋद्धि गौरव, रस गौरव, साता गौरव) से और तीन प्रकार की विराधनाओ (ज्ञान विराधना, दशन विराधना और चारित्र विराधना) से होने वाले दोपो का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करता हूँ–चार प्रकार के कपायो (क्रोध, मान, माया, लोभ) से, चार प्रकार की सज्ञाओ (आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मथुनसज्ञा, परिग्रह सज्ञा) से, चार प्रकार की विकथाओ (स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा राजकथा) मे और चार प्रकार के ध्याना (आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान धर्मध्यान शुक्लध्यान) मे। कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेपिकी पारितापनिकी और प्राणातिपातक्रिया–इन पाचो क्रियाओं के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। शब्द, रूप, गध, रस, और स्पर्श–इन पाचो कामगुणो से जो अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। सर्व-प्राणातिपात विरमण, सर्व मृपावाद विरमण, सर्व अदत्तादान विरमण, सर्व मैथुन विरमण, सर्व परिग्रह विरमण–इन पाचो महाव्रतो को सम्यक्रूप से पालन न करने से जो भी अतिचार

लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्रवणश्लेष्मजल्लसिंघाण परिष्ठापनिका समिति, इन पाचों समितियों से जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छह प्रकार के जीवों की हिंसा करने से जो अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। कृष्णलेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या इन छहों लेश्याओं के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। सात भय के स्थानों से, आठ मद के स्थानों से। नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियों से—उनका सम्यक्पालन न करने से, दशविध श्रमणधर्म की विराधना से, ग्यारह श्रावक प्रतिमाओं एवं बारह भिक्षु की प्रतिमाओं से—उनकी श्रद्धा प्ररूपणा तथा आसेवना अच्छी तरह न करने से, तेरह क्रिया के स्थानों से, चौदह जीवों के समूह से, पन्द्रह परमाधामिकों जैसा भाव या आचरण करने से, सूत्रकृतांग सूत्र के सोलह अध्ययनों से, सतरह प्रकार के असंयम से, अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य में वर्तने से, ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययनों से—तदनुसार सयम में न रहने से, बीस असमाधि के स्थानों से, इक्कीस शबलों से, बाईस परीषहों से यानी उनको सहन न करने से, सूत्रकृतांग सूत्र के २३ अध्ययनों से अर्थात् तदनुसार आचरण न करने से, चौबीस देवों से, पाच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं से, दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प और व्यव-

हार सूत्र के छब्बीस उद्देशनकालो से, सत्ताईस साधु के गुणो से यानी उनको पूणत धारण न करने मे, आचाराग तथा निशीथ सूत्र के अट्ठाईस अध्ययनो से उनतीम पापश्रन के प्रसगो से, महामोहनीय कम के तीस स्थानो मे, सिद्धो के ३१ गुणो से, बत्तीस योग सग्रहो से और तेतीस आशातनाओ से जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

तेतीस आशातनाए–१ अरिहत २ सिद्ध ३ आचार्य ४ उपाध्याय ५ साधु ६ साध्वी ७ श्रावक ८ श्राविका ९ देव १० देवी ११ इहलोक १२ परलोक १३ केवली प्ररूपित धम १४ देव मनुष्य असुरो सहित समग्रलोक, १५ सव प्राण, भूत, जीव, सत्व १६ काल १७ श्रुतदेवता १९ वाचनाचाय इन सबकी आशातना से तथा

२० सूत्र के अक्षर उलट पलट पढ़ हो २१ एक ही शास्त्र मे अन्याय स्थानो पर दिय गये एकाथक सूत्रो को एक स्थान पर लाकर पढा हो २२ हीन अक्षर पढ हो २३ अधिक अक्षर पढ हो, २४ पदहीन पढा हो २५ विनयरहित पढा हो २६ अस्थिर योग से पढा हो, २७ उदात्त आदि स्वर रहित पढा हो २८ शक्ति से अधिक पढाया हो २९ आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो ३० अकाल मे स्वाध्याय किया हो ३१ काल मे स्वाध्याय न किया हो ३२ अस्वाध्याय मे स्वाध्याय किया हो ३३ स्वाध्याय मे स्वाध्याय न किया हो–इन तेतीस आशातनाओ से जो भी अतिचार लगा हो उसका दुष्कृत–पाप मेरे लिए मिथ्या हो।

४ पोषध प्रतिमा, ५ नियम प्रतिमा, ६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ७ सचित्त त्याग प्रतिमा, ८ आरंभ त्याग प्रतिमा, ९ प्रेष्यत्याग प्रतिमा १० उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा, ११ श्रमणभूत प्रतिमा ।

प्रश्न—तेरह क्रिया स्थान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—१ अर्थ क्रिया, २ अनर्थ क्रिया, ३ हिंसा क्रिया, ४ अकस्मात् क्रिया, ५ दृष्टि विपर्यास क्रिया, ६ मृषा क्रिया, ७ अदत्तादान क्रिया, ८ अध्यात्म क्रिया. ९ मान क्रिया, १० मित्र क्रिया, ११ माया क्रिया, १२ लोभ क्रिया, १३ ईर्या-पथिकी क्रिया ।

प्रश्न—अब्रह्मचर्य के अठारह भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—देव संबंधी भोगो का मन, वचन और काया से स्वयं सेवन करना, दूसरों से कराना तथा करते हुए को भला जानना—इस प्रकार नौ भेद वैक्रिय शरीर संबंधी होते है । मनुष्य तिर्यंच संबंधी औदारिक भोगों के भी इसी तरह नौ भेद समझना चाहिये । इस तरह अब्रह्मचर्य के कुल १८ भेद होते हैं ।

प्रश्न—असमाधि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस सत्कार्य के करने से चित्त में शांति हो, आत्मा ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप मोक्ष मार्ग में अवस्थित रहे, उसे समाधि कहते हैं और जिस कार्य से चित्त में अप्रशस्त

---

‡ प्रतिमाओ के विशेष वर्णन के लिए दशाश्रुतस्कध सूत्र देखें ।

एव अशात भाव हो, ज्ञानादि मोक्ष मार्ग से आत्मा भ्रष्ट हो, उसे असमाधि कहते हैं। असमाधि के २० स्थान कहे हैं।

प्रश्न—शवल दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कार्यों के करने से चारित्र की निर्मलता नष्ट हो जाती है, उन्हे शवल दोष कहते हैं। शवल दोष इक्कीस है।

प्रश्न—चौबीस जाति के देव कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—असुरकुमार आदि १० भवनपति, भूत यक्ष आदि आठ व्यतर, सूर्य चद्र आदि पाच ज्योतिष और वैमानिक देव –इस प्रकार कुल चौबीस जाति के देव हैं।

प्रश्न—प्राण, भूत, जीव और सत्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—द्वीन्द्रिय आदि तीन विकलेन्द्रिय जीवों को 'प्राण' कहते हैं। एकेन्द्रिय जीवों को 'भूत', पचेन्द्रिय प्राणियो को 'जीव' तथा शेष सब जीवों को 'सत्त्व' कहा जाता है।

प्रश्न—आशातना करने से क्या हानि होती है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन आदि आध्यात्मिक गुणो की प्राप्ति को 'आय' कहते हैं और शातना का अर्थ–खण्डन करना है। गुरुदेव आदि पूज्य पुरुषो का अपमान करने से, आशातना करने से, सम्यग्दर्शन आदि सद्गुणों की शातना–खण्डना होती है।

प्रश्न—'अरिहताण आसायणाए' (अरिहतो की आशातना) किसे कहते हैं ?

उत्तर—'कोई भी जीव राग-द्वेष से रहित नही हो सकता,

अतः अरिहंत भी राग-द्वेप से मुक्त नहीं है।' 'अर्हन्त ने सर्वज्ञ होते हुए भी पूर्ण समाधान नहीं दिया।' 'इतने कठोर विधान वनाने वाले अर्हन्त दयालु कैसे कहे जा सकते हैं ?' आदि कहना एवं उनकी आप्तता आदि मे संशय करना अरिहंत आशातना है।

प्रश्न—सिद्ध आशातना क्या है ?

उत्तर—'सिद्ध की भी क्या कृतकृत्यता है ?' 'एक स्थान में अनंतकाल तक रुके रहना भी क्या सिद्धि है ?' 'सिद्ध हैं ही नही ?' जब शरीर ही नही हैं तो फिर उनको सुख किस वात का ? या सिद्धत्व में क्या सुख है ? इत्यादि रूप में अवज्ञा करना सिद्ध आशातना है।

प्रश्न—आचार्य आशातना किसे कहते हैं ?

उत्तर—आचार्य की आज्ञा नही मानना, आचार्य को यमपाल जैसा मानना, आचार्य की निंदा करना आदि आचार्य आशातना कहलाती है।

प्रश्न—उपाध्याय आशातना क्या है ?

उत्तर—उपाध्याय को शास्त्र कीड़े, अवहुश्रुत, वाल की खाल निकालने वाले, युगप्रवाह से अपरिचित, चमत्कार विहीन आदि मानना-कहना उपाध्याय आशातना हैं।

प्रश्न—साधु-आशातना कैसे होती है ?

उत्तर—'साधु होना नपुंसक होना है।' 'आत्म-साधक स्वार्थी हैं।' 'कमाना नही आया तो साधु हो गये' आदि कहने-मानने से साधु की आशातना होती है।

प्रश्न—साध्वी-आशातना क्या है ?

उत्तर—'साध्वियां कलहकारिणी ही होती है।' 'स्त्री साधुधर्म पाल ही नही सकती।' 'स्त्रिया अपवित्र हैं अत साध्विया भी वैसी है' इत्यादि रूप से अवहेलना करना साध्वी की आशातना है।

प्रश्न—श्रावक आशातना किसे कहते हैं ?

उत्तर—'गृहवास मे अशमात्र धर्म नही है, इसलिये श्रावक धम आराधक नही हो सकता।' 'ससार के प्रपच मे श्रावक क्या धम पालते होगे'—आदि कहने से श्रावको की अवहेलना होती है, जिसे श्रावक आशातना कहते हैं।

प्रश्न—श्राविका आशातना से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—'स्त्रिया कपटी होती है अत श्राविका क्या धम पालेगी।' 'धमस्थान मे इकट्ठी होकर दुनिया भर की निंदा करती है।' 'निठल्लियो को घर में कार्य नही है सो मुह बाध कर बैठ जाती है,' 'श्राविका गृहकार्य मे लगी रहती है, आरभ मे ही जीवन गुजारती है, बाल बच्चो के मोह मे फसी रहती है उनकी सद्गति कैसे होगी' इत्यादि कहना श्राविकाओ की अवहेलना है जो त्याज्य है।

प्रश्न—देव की आशातना कैसे होती है ?

उत्तर—देवताओं को कामगर्दभ कहना, उन्हे आलसी और अविचितकर कहना, देवता मास खाते हैं, मद्य पीते हैं इत्यादि निंदास्पद सिद्धातों का प्रचार करना, देवताओं का अपलाप-अवर्णवाद करना, देव आशातना है।

प्रश्न—इहलोक और परलोक की आशातना क्या है ?

उत्तर—स्वजाति का प्राणीवर्ग 'इहलोक' कहा जाता हैं और विजातीय प्राणी वर्ग परलोक। इहलोक और परलोक की असत्य प्ररूपणा करना, पुनर्जन्म आदि न मानना, नरकादि चार गतियों के सिद्धांत पर विश्वास न रखना आदि इहलोक और परलोक की आशातना है।

प्रश्न—'सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए' से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—देव, मनुष्य, असुर आदि सहित लोक के संबंध में झूठी प्ररूपणा करना 'सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसा-यणाए' है जैसे–यह लोक, देव का बनाया हुआ है, ब्रह्मा-ईश्वर कृत है, सात द्वीप सात समुद्र पर्यन्त ही लोक है आदि।

प्रश्न—काल आशातना किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाँच समवाय में काल समवाय को नही मानना काल की आशातना करना है। वर्तना लक्षण रूप काल है। यदि काल न हो तो द्रव्य में रूपान्तर ही कैसे हो सकता है ? ऐसे काल को न मानना 'काल आशातना' है। धार्मिक पुरु-षार्थ न करते हुए काल को ही कोसना जैसे कि–यह पांचवां आरा है हम धर्म करणी कैसे करें इत्यादि रूप से कहना पर अपनी प्रवृत्ति नहीं सुधारना भी काल आशातना है।

५ नमो चउवीसाए का पाठ

(निर्ग्रंथ-प्रवचन का पाठ)

णमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ-महावीर

पज्जवसाणाण इणमेव निग्गथ पावयण सच्च अणुत्तर केवलिय पडिपुण्ण णेयाउय ससुद्ध सल्लगत्तण्ण सिद्धिमग्ग मुत्तिमग्ग णिज्जाणमग्ग णिव्वाणमग्ग अवितहमविसधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्ग इत्थ ठिया जीवा सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वायति सव्वदुक्खाणमत करेति त धम्म सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि, त धम्म सद्दहतो पत्तियतो रोयतो फासतो पालतो अणुपालतो तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए १ असंजम परियाणामि सजम उवसपवज्जामि २ अबभ परियाणामि बभ उवसपवज्जामि ३ अकप्प परियाणामि कप्प उवसपवज्जामि ४ अण्णाण परियाणामि णाणं उवसपवज्जामि ५ अकिरिय परियाणामि किरिय उवसपवज्जामि ६ मिच्छत्त परियाणामि सम्मत्त उवसपवज्जामि ७ अबोहि परियाणामि बोहि उवसपवज्जामि ८ उम्मग्ग × परियाणामि मग्ग उवसपवज्जामि—ज समरामि, ज च न सभरामि, ज पडिक्कमामि ज च न पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि समणोऽह सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-

× कही कही 'अमग्ग' पाठ भी मिलता है।

पावकम्मो अनियाणो दिट्ठिसंपन्नो मायामोसं विवज्जिओ अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरसकम्मभूमिसु जावंति केइ साहू रयहरण-गुच्छग-पडिग्गहध(धा)रा पंच महव्वयधरा अट्ठारस सहस्स-सीलंग-रहधरा अक्खयायार-चरित्ता ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।

कठिन शब्दार्थ—चउवीसाए–चौवीस, तित्थगराणं–तीर्थंकरो को, पज्जवसाणाणं–पर्यन्तो को, इणमेव–यह ही, निग्गथं–निर्ग्रंथों का, पावयणं–प्रवचन, सच्च–सत्य है, अणुत्तरं–सर्वोत्तम है, केवलियं–सर्वज्ञ प्ररूपित अथवा अद्वितीय है, पडिपुण्णं–प्रतिपूर्ण है, णेआउयं–न्यायाबाधित है, मोक्ष ले जाने वाला है, संसुद्धं–पूर्ण शुद्ध है, सल्लगत्तणं–शल्यो को काटने वाला है, सिद्धिमग्गं–सिद्धि का मार्ग है, मुत्तिमग्गं–मुक्ति का मार्ग है, णिज्जाणमग्गं–संसार से निकलने का मार्ग है, मोक्ष स्थान का मार्ग है, णिव्वाणमग्गं–निर्वाण का मार्ग है, [illegible]–तथ्य है, यथार्थ है, अविसंधि–अव्यवच्छिन्न है, सदा शाश्वत है, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं–सब दुःखों के क्षय का मार्ग है, ठिआ–स्थित हुए, सिज्झंति–सिद्ध होते हैं, बुज्झंति–बुद्ध होते हैं, मुच्चंति–मुक्त होते हैं, परिणिव्वायंति–निर्वाण को प्राप्त होते है, सव्वदुक्खाणमंतं–सब दुःखों का अंत, तं–उस, धम्मं–धर्म की, सद्दहामि–श्रद्धा करता हूँ, पत्तियामि–प्रतीति करता हूँ, रोएमि–रुचि करता हूँ, फासेमि–स्पर्शना करता हूँ, पालेमि–

/ कहीं कहीं 'जावंत' पाठ भी मिलता है।

पालना करता हूँ, अणुपालेमि–अनुपालना करता हूँ, अब्भुट्ठि-ओमि–उपस्थित हुआ हूँ, विरओमि–निवृत्त हुआ हूँ, असजम–असयम को, परियाणामि–जानता हूँ एव त्यागता हूँ, सजम–सयम को, उवसपवज्जामि–स्वीकार करता हूँ, अबम–अब्रह्मचय को, बभ–ब्रह्मचर्य को, अकप्प–अकल्प को, कप्प–कल्प को, अण्णाणं–अज्ञान को, णाणं–ज्ञान को, अकिरिय–अक्रिया को, किरिय–क्रिया को, मिच्छत्त–मिथ्यात्व को, सम्मत्त–सम्यक्त्व को, अबोहिं–अबोधि को, बोहिं–बोधि को, उम्मग्ग–उन्मार्ग को, मग्ग–मार्ग को, समरामि–स्मरण करता हूँ, समणोह–मैं श्रमण हूँ, सजय–सयमी, विरय–विरत, पडिहय–नाश करने वाला, पच्चक्खाय–त्याग करने वाला, पावकम्मो–पाप कर्मों का, अनियाणो–निदान रहित, दिट्ठिसपन्नो–सम्यग्दृष्टि से युक्त, विवज्जिओ–सर्वथा रहित, अड्ढाइज्जेसु–अढाई, दीव-समुद्देसु–द्वीप समुद्रों में, पण्णरसकम्मभूमिसु–पन्द्रह कर्म भूमियो मे, जावति–जितने भी, केइ–कोई, रयहरण-गुच्छग-पडिगह-धरा–रजोहरण, गोच्छक पात्र के धारक है, पचमहव्वयधरा–पाच महाव्रत के धारक, अट्ठारससहस्ससीलगरहधरा–अठारह हजार शीलाग के धारक, अक्खयायार चरित्ता–अक्षत-परिपूर्ण आचार रूप चारित्र के धारक, सिरसा–शिर से ।

भावार्थ—भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर देवो को नमस्कार करता हूँ ।

यह निर्ग्रंथ प्रवचन ही सत्य है, अनुत्तर–सर्वोत्तम हैं, केवल–अद्वितीय है अथवा केवलज्ञानियो से प्ररूपित है, प्रति-

पूर्ण है नैयायिक–मोक्ष पहुंचाने वाला है अथवा न्याय से अवाधित है, पूर्ण शुद्ध अर्थात् सर्वथा निष्कलंक है, माया आदि शल्यो को नष्ट करने वाला है, सिद्धिमार्ग–पूर्ण हितार्थ रूप सिद्धि की प्राप्ति का उपाय है, मुक्तिमार्ग है, निर्याण-मार्ग-मोक्ष स्थान का मार्ग है, निर्वाण मार्ग-पूर्ण शांति रूप निर्वाण का मार्ग है। अवितथ–मिथ्यात्व रहित है. अविसंधि–विच्छेद रहित अर्थात् सनातन नित्य है तथा पूर्वापर विरोध रहित है, सब दु:खों का क्षय करने का मार्ग है।

इस निर्ग्रंथ प्रवचन मे स्थिर रहने वाले अर्थात तदनुसार आचरण करने वाले भव्य जीव सिद्ध होते हैं, वुद्ध–सर्वज्ञ होते हैं, मुक्त होते है, परिनिर्वाण- पूर्ण आत्म शांति को प्राप्त करते हैं, समस्त दु:खो का सदा काल के लिए अंत करते है।

मै निर्ग्रंथ प्रवचन रूप धर्म की श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हूँ रुचि करता हूं, स्पर्शना करता हूं, पालना अर्थात् रक्षा करता हूं, विशेष रूप से पालना करता हूं।

मै इस जिनधर्म (निर्ग्रंथ प्रवचन) की श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, स्पर्शना–आचरण करता हुआ, पालना-करता हुआ, विशेष रूप से पालना करता हुआ उस धर्म की आराधना करने में पूर्ण रूप से अभ्युत्थित–तत्पर हूँ और धर्म की विराधना से पूर्णतया निवृत्त होता हूँ।

असंयम को ज्ञपरिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से छोड़ता हूँ। अब्रह्मचर्य को जानता और त्यागता हूँ, ब्रह्मचर्य को स्वीकार करता हूँ, अकल्प को जानता हूँ और त्यागता हूँ

कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को जानता हूँ और त्यागता हूँ ज्ञान को स्वीकार करता हूँ, अक्रिया को जानता हूँ और त्यागता हूँ, क्रिया को स्वीकार करता हूँ, मिथ्यात्व को जानता तथा त्यागता हूँ सम्यक्त्व का स्वीकार करता हूँ। अबोधि को त्यागता हूँ बोधि को स्वीकार करता हूँ, उन्माग को त्यागता हूँ और माग का भावपूवक स्वीकार करता हूँ।

जो दोष मुझे याद हैं और जो याद नहीं हैं जिनका प्रतिक्रमण कर चुका हूँ और जिनका प्रतिक्रमण नही कर पाया हूँ, उन सब दिवस सबधी अतिचारों—दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ।

मै श्रमण हूँ, सयत-सयमी हूँ, विरत-सावद्य व्यापारो एव ससार म निवत्त हूँ, पाप कर्मों को प्रतिहत करने वाला हूँ। एव पापों का त्याग करने वाला हूँ, निदान शल्य से रहित दृष्टि सपन्न—सम्यगदशन से युक्त हूँ और माया सहित मृषा-वाद का परिह र करन वाला हूँ।

ढाई द्वीप और दो समुद्र रूप मनुष्य क्षेत्र मे पन्द्रह कम-भूमि क्षेत्रो मे जो भी रजोहरण, पूजनी एव पात्र को धारण करने वाले तथा पाच महाव्रत अठारह हजार शीलाग रूप रथ के धारण करने वाले एव अक्षय आचार के पालक त्यागी साधु हैं उन सब को शिर से, मन से, मस्तक से वदना करता हूँ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—इस पाठ मे सवप्रथम चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार क्यों किया गया है ?

उत्तर—यह नियम है कि जैसी साधना करनी हो उसी साधना के उपासकों का स्मरण किया जाता है। युद्ध-वीर युद्धवीरो का तो अर्थवीर अर्थवीरों का स्मरण करते है। यह धर्मयुद्ध है अतः यहां धर्मवीरों का ही स्मरण किया गया है।

जैन धर्म के ये चौवीस तीर्थंकर धर्मसाधना के लिए अनेकानेक भयंकर परीषह सहन करते रहे एवं अंत में साधक से सिद्ध पद पर पहुँच कर अजर अमर परमात्मा हो गए। अतः उनका पवित्र स्मरण हम साधकों के दुर्बल मन मे उत्साह, वल एवं स्वाभिमान की भावना प्रदीप्त करने वाला है। उनकी स्मृति हमारी आत्मशुद्धि को स्थिर करने वाली है। तीर्थंकर हमारे लिए अंधकार मे प्रकाश स्तंभ के समान है अतः सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव से महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकरो को नमस्कार किया गया है।

प्रश्न—निर्ग्रंथ का क्या अर्थ है ?

उत्तर—निर्ग्रंथ का अर्थ है—धन-धान्य आदि बाह्य ग्रंथ और मिथ्यात्व अविरति तथा क्रोध, मान, माया आदि आभ्यंतर ग्रंथ अर्थात् परिग्रह से रहित पूर्ण त्यागी संयमी साधु। जो राग-द्वेष की गांठ को सर्वथा अलग कर देता है तोड़ देता है वही निश्चय मे निर्ग्रंथ है। यहां निर्ग्रंथ शब्द का यही अर्थ लिया गया है, अतः सच्चे निर्ग्रंथ अरिहंत और सिद्ध है।

प्रश्न—प्रवचन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें जीवादि पदार्थों का तथा ज्ञानादि रत्न-त्रय की साधना का यथार्थ रूप से निरूपण किया गया है वह

सामायिक से लेकर बिंदुसार पूर्व तक का आगम साहित्य प्रवचन है।

प्रश्न—निर्ग्रंथ-प्रवचन से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—निर्ग्रंथ प्रवचन का अर्थ है-अरिहन्तों का प्रवचन अर्थात् जिन धर्म। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक्तप रूप मोक्ष मार्ग ही जिनधर्म है।

प्रश्न—जैन धर्म की महिमा बताने के लिए कौन से विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं?

उत्तर—अहिंसा प्रधान जैन धर्म के लिये प्रयुक्त ये विशेषण सर्वथा युक्तियुक्त हैं-१ सच्चं (सत्य)-रत्नत्रय रूप जैनधर्म सत्य है। २ अणुत्तर (अनुत्तर)-जैनधर्म सर्वोत्तम है। ३ केवलियं-जैनधर्म के सम्यग्दर्शन आदि तत्त्व अद्वितीय है, सर्वश्रेष्ठ है। यह धर्म केवलज्ञानियों द्वारा कहा हुआ है अत पूर्ण सत्य है, त्रिकालाबाधित है। ४ पडिपुण्ण-जैनधर्म एक परिपूर्ण धर्म है। किसी प्रकार भी खंडित नहीं है और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले सद्गुणों से पूर्ण भरा हुआ है। ५ नेआउयं-जैन धर्म, 'नैयायिक' है-मोक्ष में ले जाने वाला है। सम्यग्दर्शन आदि जैनधर्म सर्वथा न्याय संगत है। केवल आगमोक्त होने से ही मान्य है, यह बात नहीं। यह पूर्ण तर्कसिद्ध धर्म है। ६ सल्लगत्तण (शल्य कर्तन)-माया, निदान और मिथ्यादर्शनशल्य को काटने वाला यह धर्म है ७ सिद्धिमग्ग ८ मुत्तिमग्ग ९ निज्जाणमग्ग १० निव्वाणमग्ग-सिद्धिमार्ग- आत्म स्वरूप की प्राप्ति का उपाय, मुक्तिमार्ग-कर्म-

वंधन से मुक्ति का साधन, निर्याण मार्ग–मोक्ष स्थान का मार्ग निर्वाणमार्ग–पूर्ण शांति रूप निवार्ण का मार्ग–उपाय सम्यग्-दर्शन आदि रूप जैन धर्म ही है। ११ अवितहं (अवितथ)– जिन शासन सत्य है असत्य नही १२ अविसंधि–जैनधर्म विच्छेद रहित अर्थात् सनातन नित्य है तथा पूर्वापर विरोध रहित है १३ सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं (सर्वदुःखप्रहीण मार्ग)–सभी दुखों को पूर्णतया क्षय कर शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग जैन-धर्म है।

प्रश्न—ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से क्या आशय है ?

उत्तर—ज्ञ-परिज्ञा का अर्थ, हेय आचरण को स्वरूपतः जानना है और प्रत्याख्यान परिज्ञा का अर्थ–उसका प्रत्या-ख्यान करना है–उसको छोड़ना है। प्रत्याख्यान परिज्ञा से पहले ज्ञ-परिज्ञा अत्यंत आवश्यक है। जानकर-समझकर विवेक पूर्वक किया हुआ प्रत्याख्यान ही सुप्रत्याख्यान होता है।

प्रश्न—इस पाठ में जानने योग्य और ग्रहण करने योग्य आठ वोल कौन-कौन से है ?

उत्तर—१ असंयम–प्राणातिपात आदि २ अब्रह्मचर्य– मैथुन वृत्ति ३ अकल्प–अकृत्य ४ अज्ञान–मिथ्याज्ञान ५ अक्रिया-असत्क्रिया ६ मिथ्यात्व–अतत्त्वार्थ श्रद्धान ७ अबोधि–मिथ्यात्व का कार्य ८ उन्मार्ग–अमार्ग–हिंसा आदि, ये आठ वोल जान-कर छोड़ने योग्य है। उपरोक्त आत्म विरोधी प्रतिकूल आच-

रण का त्याग कर १ सयम २ ब्रह्मचय ३ कल्प–कृत्य ४ सम्यग्ज्ञान ५ सत्क्रिया ७ सम्यग्दशन ७ बोधि–सम्यकत्व का कार्य और ८ सन्मार्ग को स्वीकार करना।

प्रश्न—मनुष्य क्षेत्र कहा तक है ?

उत्तर—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और अर्द्ध पुष्करद्वीप तथा लवण समुद्र एव कालोदधि समुद्र–यह अढाई द्वीप समुद्र–परिमित मानव क्षेत्र है। मनुष्य क्षेत्र मे ही श्रमणधर्म की आराधना–साधना हो सकती है आगे के क्षेत्रो मे न मनुष्य हैं और न श्रमणधर्म की साधना है।

प्रश्न—अठारह हजार शीलाग कौन-कौन से है ?

उत्तर—शील का अर्थ आचार है। भेदानुभेद की दृष्टि आचार के अठारह हजार भेद इस प्रकार होते हैं —

क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, लाघव, सत्य, सयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य–यह दश प्रकार का श्रमणधर्म है। दशविध श्रमणधर्म के धर्ता मुनि पाच स्थावर, चार त्रस और एक अजीव–इस प्रकार दश की विराधना नही करते, अत दशविध श्रमणधर्म को पृथ्वीकाय आदि दश की अविराधना से गुणन करने पर १०×१० = १०० भेद हो जाते है। पांच इन्द्रियों के वश मे हो कर ही मानव पृथ्वीकाय आदि दश की विराधना करता है अत सौ को पाच इन्द्रियो के विजय से गुणन करने पर १००×५ = ५०० भेद होते हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह–इन चार सज्ञाओं के निरोध से

पाच सौ को चार से गुणन करने से ५००×४ = २००० भेद होते है। दो हजार को मन, वचन, और [illegible] के निरोध से तीन गुणा करने पर २०००×३ = ६००० भेद होते है। छह हजार को करना, कराना और अनुमोदन रूप तीन करण से गुणन करने पर ६०००×३ = १८००० अठारह हजार शील के भेद होते है।

पांच पदों की वन्दना∴

पहिले पद श्री अरिहंत भगवान् जघन्य बीस तीर्थकरजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी, उनमें वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते है। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणी गुण कर के विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बलवीर्य, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र धरावें, चँवर बिजावें, पुरुषकार-पराक्रम के धरणहार, अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरते हैं,

∴ इन पाठो को मालवा, मेवाड़, मारवाड आदि प्रदेशों मे 'भाव वंदना' कहते हैं और गुजरात आदि प्रदेशो में 'खामणा' कहते हैं।

जघन्य दो करोड केवली उत्कृष्ट नव करोड केवली, केवलज्ञान केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के जाननहार।

सवैया—नमू श्री अरिहन्त कर्मों का किया अन्त,
हुआ सो केवलवत, करुणा-भण्डारी हैं।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार,
समझावे नर नार पर उपकारी है॥
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार।
गुण हैं अनतसार, दोष परिहारी हैं।
कहत है तिलोकरिख, मन वच काया करी,
लुली लुली वारम्बार, वन्दना हमारी है॥

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। हाथ जोड, मान मोड, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार वदना नमस्कार करता हूँ।

"तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि वदामि णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि।"

आप मागलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन! हे नाथ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदाकाल शरण हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—अरिहंत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरिहंत शब्द में दो पद है–'अरि' और 'हन्त'। अरि का अर्थ है राग, द्वेष, मोह आदि आंतरिक शत्रु और 'हन्त' का अर्थ है–मारने वाला अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि चार घाती कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करने वाला तथा जो आध्यात्मिक शक्ति व साधना से मन के संपूर्ण विकारों पर विजय प्राप्त कर लेते है। वे सुर नर मुनिजन आदि सभी के वंदनीय होते हैं।

प्रश्न—अरिहंत में कितने गुण होते है ?

उत्तर—अरिहत मे बारह गुण होते हैं—

१ अनंतज्ञान–संपूर्णज्ञान, केवलज्ञान। यह ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय (नष्ट) होने से प्राप्त होता है।

२ अनंतदर्शन–संपूर्ण दर्शन, केवलदर्शन। यह दर्शनावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से प्राप्त होता है।

३ अनंतचारित्र–क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्र। यह मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय होने से प्राप्त होता है।

४ अनंत बलवीर्य–अनन्त शक्ति–सामर्थ्य। यह अंतराय कर्म के सर्वथा क्षय से प्राप्त होता है।

उपरोक्त चारों गुण चार घाती कर्मों के क्षय से प्राप्त होते हैं। आगे बताये जाने वाले आठ गुण देव कृत होते है। जिन्हें 'अष्ट महाप्रातिहार्य" भी कहते हैं। ये जिन (तीर्थंकर)

नाम कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं। सामान्य केवलियो के नही होते।

५ दिव्यध्वनि–तीर्थंकर भगवान् की वाणी एक योजन (चार कोस) तक सुनाई दे सकती है और सभी प्राणियो के के लिए उनकी भाषा मे परिणमती है।

६ भामण्डल–भगवान् के पीठ पीछे मस्तक के पास अति भास्वर (देदीप्यमान) प्रकाश पुंज (भामण्डल) रहता है।

७ स्फटिक सिंहासन–आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणि का बना हुआ पाद पीठ वाला सिंहासन होता है, जिस पर समवशरण मे भगवान् विराजते हैं।

८ अशोक वृक्ष–जो भगवान् से १२ गुणा ऊँचा छाया रहता है।

९ कुसुम वृष्टि–देवकृत अचित पुष्पो (फूलो) की वर्षा होती है।

१० देव दुन्दुभि–जिसे देवता आकाश मे बजाते हैं।

११ तीन छत्र–जो भगवान् के एक ऊपर एक होते हैं। जिसमे भगवान् का तीन लोक का नाथ होना सूचित करते हैं।

१२ दो चामर–जिसे देव दोनो ओर बीजते है।

प्रश्न—तीर्थंकर, एक काल मे कम-से-कम और अधिक से अधिक कितने होते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा कम से कम बीस और अधिक से अधिक १६० और जब पाच भरत और पाच एरवत क्षेत्र मे भी तीर्थंकर जन्म लेते हैं तब १७० होते हैं।

प्रश्न—सामान्य केवली जघन्य और उत्कृष्ट कितने होते हैं ?

उत्तर—सामान्य केवली जघन्य दो करोड़ उत्कृष्ट नव करोड़ होते हैं।

प्रश्न—अठारह दोष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—अरिहंत प्रभु मे इन अठारह दोषों + का सर्वथा अभाव होता है—१ दानान्तराय २ लाभान्तराय ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय ५ वीर्यान्तराय, ६ मिथ्यात्व ७ अज्ञान ८ अविरति ९ काम १० हास्य ११ रति १२ अरति १३ शोक १४ भय १५ जुगुप्सा १६ राग, १७ द्वेष और १८ निद्रा।

दूजे पद श्री सिद्ध भगवान् महाराज चौदह प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए हैं। आठ कर्म खपा कर मोक्ष पहुँचे हैं। १ तीर्थसिद्धा, २ अतीर्थसिद्धा, ३ तीर्थकरसिद्धा, ४ अतीर्थंकरसिद्धा, ५ स्वयंबुद्धसिद्धा, ६ प्रत्येकबुद्धसिद्धा, ७ बुद्धबोधितसिद्धा, ८ स्त्रीलिंगसिद्धा, ९ पुरुषलिंगसिद्धा, १० नपुंसकलिंगसिद्धा, ११ स्वलिंगसिद्धा, १२ अन्यलिंगसिद्धा, १३ गृहस्थलिंगसिद्धा, १४ एकसिद्धा, १५ अनेकसिद्धा। जहाँ जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्रय नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं,

---

+ पंचेव अन्तराया, मिच्छत्तमन्नाणमविरइ कामो।
हास छग राग दोसा, निद्दाऽट्ठारस इमे दोसा॥

मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नही, ज्योत मे ज्योत विराजमान सकल कार्य सिद्ध कर के, चौदह प्रकारे, पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए हैं। १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त सुख, ४ क्षायिक समकित, ५ अटल अवगाहना, ६ अमूर्तिक ७ अगुरुलघु, ८ अनन्त आत्मसामर्थ्य-ये आठ गुण कर के सहित है।

सवैया-सकल करम टाल, वश कर लियो काल,
मुगति मे रह्या माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव,
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है।
अचल अटल रूप, आवे नही भव-कूप,
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है।
कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु,
सदा ही उगते सूर्य, वन्दना हमारी है।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय आशातना की हो तो वारम्वार हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड, मान मोड, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वदना नमस्कार करता हूँ। यावत् भव-भव मे सदाकाल आपका शरण हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—सिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—सिद्ध का अर्थ है–जिन्होने सम्पूर्ण कार्यो को सिद्ध कर लिया है। जो राग द्वेष रूप संपूर्ण शत्रुओं को जीत कर अरिहन्त वन कर चौदहवें गुणस्थान की भूमिका पार कर, सदा के लिए जन्म-मरण, आंधि, व्याधि, उपाधि से रहित होकर आत्म स्वरूप में स्थित हैं। जो द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के कर्मो से रहित हैं, जो लोक के अग्र भाग में विराजमान हैं, वे सिद्ध हैं।

प्रश्न—सिद्ध भगवान् में कितने गुण होते है ?

उत्तर—सिद्ध भगवान् में आठ कर्मो के क्षय से आठ गुण प्रगट होते है, वे इस प्रकार हैं–

१ अनंतज्ञान (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से)
२ अनंतदर्शन (दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से)
३ अनंतसुख (वेदनीय कर्म के क्षय से)
४ क्षायिक सम्यक्त्व (मोहनीय कर्म के क्षय से)
५ अटल अवगाहना (आयुष्य कर्म के क्षय से)
६ अमूर्तिक (नाम कर्म के क्षय से)
७ अगुरुलघुत्व (गोत्र कर्म के क्षय से)
८ अनन्त आत्म सामर्थ्य (अन्तराय कर्म के क्षय से)

प्रश्न—सिद्ध भगवान् के कितने भेद हैं और कौन-कौन से है ?

उत्तर—सिद्ध होने के पश्चात् सभी आत्माएं समान होजाती हैं उनमें कोई भेद नहीं होता। किंतु सिद्धों की सांसारिक अवस्था (पूर्वावस्था) की दृष्टि से उनमें १५ भेद माने गये हैं–

१ तीर्थसिद्ध–साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध सघ की स्थापना के पश्चात् जिन्होने मुक्ति प्राप्त की । जैसे गौतमस्वामी आदि ।

२ अतीर्थसिद्ध–चार तीर्थ की स्थापना के पहले जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की । जैसे-मरुदेवी माता ।

३ तीर्थंकर सिद्ध–जिन्होने तीर्थंकर की पदवी प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त की । जैसे–भगवान् ऋषभदेव आदि २४ तीर्थंकर तथा भूतकाल मे अनत तीर्थंकरो की अनत चौवीसिया हो चुकी हैं ।

४ अतीर्थंकरसिद्ध–जिन्होने तीर्थंकर की पदवी प्राप्त न करके मोक्ष प्राप्त किया । जैसे–गौतम गणधर, जम्बूकुमार आदि ।

५ स्वय बुद्ध सिद्ध–विना उपदेश के पूर्वजन्म के सस्कार जागृत होने से जिन्हे ज्ञान हुआ और सिद्ध हुए । जैसे कपिल केवली आदि ।

६ प्रत्येक बुद्ध सिद्ध–किसी पदार्थ को देख कर विचार करते-करते बोध प्राप्त हुआ और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया । जैसे–नमिराजर्षि, करकण्डू राजा ।

७ बुद्ध बोधित सिद्ध–गुरु के उपदेश से ज्ञानी हो कर जिन्होने मुक्ति प्राप्त की । जैसे–जम्बू स्वामी ।

८ स्त्रीलिंग सिद्ध–जैसे मरुदेवी माता, चन्दनबाला आदि।

९ पुरुषलिंग सिद्ध–जैसे अर्जुनमाली आदि ।

१० नपुसक लिंग सिद्ध–नपुसक दो प्रकार के होते हैं–स्त्री

नपुंसक और पुरुष नपुसक। पुरुष नपुंसक के फिर दो भेद होते है—१ जन्म नपुसक और २ कृत नपुंसक। राजा के अंत:-पुर की रक्षा आदि के लिए पुरुष को नपुसक बना कर अंतः-पुर में रखा जाता है। वह तो वास्तव में नपुंसक है ही नही क्योकि वह तो पुरुष रूप में ही जन्मा था किन्तु पीछे उसे नपुंसक बना दिया गया है, इसलिए जन्म नपुंसक ही वास्तव में नपुसक है। जन्म नपुसक उसी भव में चारित्र अंगीकार करके केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष जा सकता है। यह बात भगवती सूत्र के छब्बीसवे शतक के दूसरे उद्देशक से स्पष्ट सिद्ध होती है।

११ स्वलिंग सिद्ध—रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि वेश मे जिन्होने मुक्ति पायी, जैसे जैन साधु, गजसुकुमाल आदि।

१२ अन्य लिंग सिद्ध—जैन साधु के वेष से अन्य संन्यासी आदि के वेषो में भाव संयम द्वारा केवलज्ञान उपार्जित कर वेष परिवर्तन जितना समय न होने पर जिन्होने मुक्ति पायी। जैसे वल्कलचिरी आदि।

१३ गृहस्थ लिंग सिद्ध—गृहस्थ के वेष में जिन्होंने भाव संयम प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। जैसे मरुदेवी माता।

१४ एक सिद्ध—एक समय मे एक ही जीव मोक्ष में जावे। जैसे—महावीर स्वामी।

१५ अनेक सिद्ध—एक समय में अनेक जीव मोक्ष में जावे। एक समय मे उत्कृष्ट १०८ तक मोक्ष में जा सकते है। जैसे—

ऋषभदेव स्वामी ।

प्रश्न—सिद्धो के १४ प्रकार कौन से हैं ?

उत्तर—सिद्धो के चोदह प्रकार कहे हैं अर्थात् चोदह प्रकार से सिद्ध हो सकते हैं। ये चोदह भेद उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवे अध्ययन की गाथा ५०-५१ मे इस प्रकार वताये हैं–

१ स्त्रीलिंग सिद्ध २ पुरुष लिंगसिद्ध ३ नपुसकलिंग सिद्ध ४ स्वलिंग सिद्ध ५ अन्यलिग सिद्ध ६ गृहस्थ लिंगसिद्ध ७–८–९ जघन्य अवगाहना, मध्यम अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध हो सकते हैं १० ऊध्वलोक मे ११ अधोलोक मे १२ तिर्यग्लोक मे १३ समुद्र मे और १४ जलाशय मे सिद्ध हो सकते हैं।

तीजे पद श्री आचार्यजी महाराज छत्तीस गुण कर के विराजमान, पाच महाव्रत पाले, पाच आचार पाले, पाच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, नव वाड सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, पाच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधे, ये छत्तीस गुण । आठ सम्पदा–१ आचार सम्पदा, २ श्रुत सम्पदा, ३ शरीर सम्पदा, ४ वचन सम्पदा, ५ वाचना सम्पदा, ६ मति सम्पदा, ७ प्रयोगमति सम्पदा और ८ सग्रह परिज्ञा सपदा सहित हैं ।

सवैया—गुण हैं छत्तीस पूर, धरत धरम उर,
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है ।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूपवन्त,

भणिया सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है ॥
अधिक मधुर वेण कोई नही लोपे केण,
सकल जीवों के सेण, कीरति अपारी है ।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देते सीख,
ऐसे आचारजजी को वन्दना हमारी है ॥

ऐसे आचार्यजी महाराज न्याय पक्ष वाले, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय-अचित्त वस्तु के ग्रहणकार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सौभागी हैं । ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय-आशातना की हो, तो वारम्वार हे आचार्यजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार वंदना नमस्कार करता हूँ । यावत् सदाकाल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—आचार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान आदि पांच आचार का स्वयं दृढ़ता से पालन करते हैं और अपने आश्रित साधु-साध्वीजी को दृढ़ता से पालन करवाते है । चतुर्विध संघ का पथ प्रदर्शन करते है । जो संघ के नायक हैं । जो दीपक के तुल्य है । वे आचार्य कहे जाते हैं ।

प्रश्न—आचार्य में कितने गुण होते है ?

उत्तर—आचार्य में ३६ गुण पाए जाते है । वे इस प्रकार है—

५ महाव्रत, ५ आचार (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार) पालते है। ५ इन्द्रियो को जीतते है। ४ कषाय का त्याग करते हैं। ९ वाड सहित ब्रह्मचर्य पालते हैं। ५ समिति और ३ गुप्ति की आराधना करते हैं।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य की नौ वाड कौनसी है ?

उत्तर—१ जहा स्त्री, पशु, नपुसक रहते हो, वहा ब्रह्मचारी न रहे।

२ स्त्रियो की कथा वार्ता न करे।

३ स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठें। उनके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त तक उस आसन पर न बैठे।

४ स्त्रियो के मनोरम व मनोहर अगो को न देखे।

५ स्त्रियो के गीत, रुदन आदि न सुने।

६ पूर्व मे भोगे हुए काम भोगो का स्मरण न करे।

७ गरिष्ठ भोजन न करे।

८ रूखा-सूखा भोजन भी अधिक ठूस-ठूस कर न करे।

९ शरीर, वस्त्र, उपकरण आदि की विभूषा, अन्जन, मन्जन, स्नान (छोटा-बडा) न करे।

१० शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, मनोज्ञ पर राग और अमनोज्ञ पर द्वेष न करे। यह दसवां बोल है, जिसे 'कोट' कहते हैं।

प्रश्न—आचार सम्पदा क्या है ?

उत्तर—चारित्र की दृढता को 'आचार सम्पदा' कहते हैं।

इसके चार भेद हैं–

१ संयम की सभी क्रियाओं में मन, वचन, काया को स्थिरतापूर्वक लगाना, २ निरभिमानता, ३ अप्रतिबद्ध विहार ४ गम्भीर विचार तथा दृढ़ स्वभाव, चित्त की चंचलता न होना।

प्रश्न—श्रुतसम्पदा क्या है ?

उत्तर—श्रुतज्ञान ही 'श्रुतसम्पदा' है। आचार्य को बहुत शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। इसके चार भेद हैं–१ बहु-श्रुतता, २ परिचित श्रुतता–अपने नाम की तरह सभी शास्त्र याद हो, उच्चारण शुद्ध हो और नित्य स्वाध्यायी हो ३ विचित्र श्रुतता–अपने और दूसरे के मत का जानकार हो ४ घोष बिशुद्धि–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों का पूरा ध्यान रखना।

प्रश्न—शरीर सम्पदा से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—शरीर का प्रभावशाली तथा सुसंगठित होना ही शरीर सम्पदा है। इसके चार भेद हैं–१ आरोह परिणाह संपन्न–गणी (आचार्य) के शरीर की लम्बाई चौडाई सुडौल होनी चाहिये, २ लज्जनीय अंगवाला न हो अर्थात् अंधा, काणा, खोड़ा आदि विकलांग न हो ३ स्थिर संहनन–शरीर का संगठन स्थिर हो, ४ प्रतिपूर्णेन्द्रिय–सभी इन्द्रियां पूरी हो।

प्रश्न—वचन सम्पदा क्या है ?

उत्तर—मधुर, प्रभावशाली तथा आदेय वचनों का होना, वचन सम्पदा है। इसके भी चार भेद हैं–१ आदेय वचन २ मधुर वचन ३ निष्पक्ष वचन ४ असंदिग्ध वचन युक्त होना।

प्रश्न—वाचना सम्पदा किसे कहते है ?

उत्तर—शिष्यो को शास्त्र आदि पढाने की योग्यता को 'वाचना सम्पदा' कहते हैं। इसके चार भेद है–१ विचयोद्दश–किन शिष्यों को कौनसा शास्त्र, कौनसा अध्ययन कैसे पढाना ? इसका ठीक-ठीक निर्देश करना २ विचय वाचना–शिष्य का योग्यतानुसार वाचना देना ३ जितना ग्रहण कर सके उतना,पढाना ४ अर्थ की सगति करके पढाना।

प्रश्न—मति सम्पदा किसे कहते है ?

उत्तर—मतिज्ञान की उत्कृष्टता को 'मति सम्पदा' कहते हैं। इसके चार भेद हैं–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्रश्न—प्रयोगमति सम्पदा किसे कहते हैं ?

उत्तर—शास्त्रार्थ या धर्मचर्चा के लिए अवसर आदि की जानकारी को 'प्रयोगमति सपदा' कहते है। इसके चार भेद है–१ अपनी शक्ति का देख कर वाद(धर्मचर्चा)करना २ परिषदा ३ क्षेत्र और ४ विषय का पूरा ज्ञान कर वाद मे प्रवृत्ति करना।

प्रश्न—सग्रह परिज्ञा सम्पदा क्या है ?

उत्तर—वर्षावास (चातुर्मास) आदि के लिए मकान, पाटला वस्त्रादि का ध्यान रख कर आचार के अनुसार सग्रह करना 'सग्रह परिज्ञा सम्पदा' है। इसके चार भेद हैं–१ चातुर्मास योग्य क्षेत्र की जानकारी २ पीठ, फलक, सथारे आदि का ध्यान रखना ३ यथासमय सभी आचारो का दृढता मे पालन करना ४ गुरुओ के, गुणीजनो के सम्मान का ध्यान रखना।

प्रश्न—आचार्य के छत्तीस गुण प्रकारान्तर से कौन-कौनसे कहे है ?

उत्तर—वंदना में कहे हुए छत्तीस गुणों के अलावा आचार्य के छत्तीस गुण इस प्रकार भी कहे जाते हैं—

१ ज्ञानाचार के ८ भेद, दर्शनाचार के ८ भेद, चारित्राचार के ८ भेद और तपाचार के १२ भेद, कुल छत्तीस भेद होते है। ये आचार्य के छत्तीस गुण कहे जाते हैं।

२ आठ सम्पदा, दस स्थिति कल्प, बारह तप और छह आवश्यक, कुल मिलाकर ये छत्तीस भेद भी आचार्य के छत्तीस गुण कहे जाते हैं।

३ आचार्य की आठ सम्पदाएं है। प्रत्येक सम्पदा के उपरोक्त चार-चार भेद, कुल बत्तीस भेद होते हैं। आचार, श्रुत, विक्षेपण और दोष-निर्घातन, ये विनय के चार भेद (शिष्य को योग्य बनाने के चार बोल) हैं। आठ सम्पदा के ३२ और चार विनय-ये छत्तीसँ आचार्य के गुण कहे जाते हैं।

चौथे पद श्री उपाध्यायजी महाराज ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरणसत्तरी करणसत्तरी, इन पच्चीस गुण कर के सहित, ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जाने, १४ पूर्व के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं—

ग्यारह अंग—आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अंतगडदसा,

अणुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र ।

बारह उपांग–उववाई, रायप्पसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा,जम्बूदीवपन्नत्ती, चदपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया,कप्पवडसिया, पुष्फिया,पुष्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूल सूत्र–उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी सूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र ।

चार छेद–दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र, निशीथ सूत्र और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र तथा अनेक ग्रथो के जानकार, सात नय, चार निक्षेप, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार। मनुष्य या देवता कोई भी विवाद मे जिनको छलने मे समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं ।

सवैया–पढत ग्यारह अग, करमो सु करे जग,
पाखडी को मान भग, करण हुशियारी है ।
चवदे पूरव धार, जानत आगम सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है ॥
पढावे भविक जन, स्थिर कर देते मन,
तप कर तावे तन, ममता को मारी है ।
कहत है तिलोकरिख, ज्ञान-भानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को वन्दना हमारी है ॥

ऐसे उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अन्धकार के मेटनहार, समकित रूप उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए वारए धारए इत्यादि अनेक गुण कर के सहित है। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे उपाध्यायजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करे। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वंदना नमस्कार करता हूँ। यावत् सदाकाल शरण हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—उपाध्याय किसे कहते है ?

उत्तर—जो साधु साध्वी को रहस्य ज्ञान सहित शास्त्राध्ययन कराते हैं, जो पापाचार के प्रति विरक्ति और सदाचार के प्रति अनुरक्ति की शिक्षा प्रदान करते हैं जो सारए—विस्मृत भूले हुए पाठ का स्मरण कराते है वारए—पाठ की अशुद्धि का निवारण करते है धारए—अनेक शास्त्र व उनके अर्थ को धारण करने वाले तथा दूसरों को धारण करवाने वाले हैं, जो भ्रान्ति को दूर कर ज्ञान की ज्योति प्रदान करते है, उसे उपाध्याय कहते हैं।

प्रश्न—उपाध्याय, कितने गुण युक्त होते है ?

उत्तर—उपाध्याय ११ अंग, १२ उपांग, १ चरणसत्तरी और १ करणसत्तरी इन पच्चीस गुण सहित होते हैं।

प्रश्न—अंग सूत्र कितने है ?

उत्तर—हाथ पाव आदि की तरह मुख्य सूत्र, अग सूत्र कहलाते हैं। आचाराङ्ग आदि गणधरकृत ११ अग सूत्र है। बारहवा अग दृष्टिवाद है वह अभी विच्छिन्न हो गया है। अत उपलब्ध नही है।

प्रश्न—उपाग सूत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—अगुली आदि उपागो के समान विवेचक सूत्र उपाग सूत्र कहलाते हैं। अन्य बहुश्रुत पूर्वधर आचार्य कृत उववाई आदि १२ उपाग है।

प्रश्न—चरण सत्तरी के कितने भेद होते हैं।

उत्तर—चरण सत्तरी मे ७० भेद इस प्रकार हैं—५ महाव्रत, ४ कषाय निग्रह, ३ ज्ञान, दर्शन चारित्र सपन्न, ९ वाड ब्रह्मचर्य, १० यतिधर्म १० वैयावृत्य १२ तप १७ सयम, ये कुल ७० भेद हैं।

प्रश्न—करणसत्तरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर—५ इन्द्रिय विजय, ५ समिति ३ गुप्ति, ४ पिण्ड विशुद्धि (आहार शय्या वस्त्र पात्र) ४ अभिग्रह (द्रव्य क्षेत्र काल भाव) १२ भिक्षु प्रतिमा १२ भावनाएँ और २५ प्रकार के प्रतिलेखन, ये ७० भेद करणसत्तरी के है।

पाचवें पद 'नमो लोए सव्वसाहूण'—अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड जयवन्ता विचरे। पांच महाव्रत पाले, पांच इन्द्रिय जीते,

चार कषाय टाले, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मनसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पन्ना, चारित्तसम्पन्ना, वेदनीयसमाअहियासनीया, मरणांतियसमाअहियासनीया- ऐसे सत्ताईस गुण कर के सहित है। पांच आचार पाले, छह काय की रक्षा करे, सात व्यसन छोड़े, आठ मद छोड़े, नव वाड़ सहित ब्रह्मचर्य पाले दस प्रकार यति-धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सत्रह भेदे संयम पाले, अठारह पापों को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महामोहनीय कर्म निवारे, तेतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल आहार पानी लेवे, संतालीस दोष टाल के भोगे, बावन अनाचार टाले, बुलाये आवे नहीं,नेतिया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चाले इत्यादि काय-क्लेश करे और मोह ममता रहित है।

सवैया—आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय,
बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है॥
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम,
धरम को करे काम, ममता को मारी है।

कहन है तिलोकरिख, करमो का टाले विख,
ऐसे मुनिराजजी को वन्दना हमारी है।

ऐसे मुनिराज आपकी दिवस सबधी कोई अविनय आशातना की हो, तो वारम्वार हे मुनिराज ! मेरा अपराध क्षमा करे। हाथ जोड, मान मोड, शीश नमा कर, तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार वदना नमस्कार करता हूँ। यावत् सदाकाल शरण हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—साधु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मोक्ष की साधना करते है, जो पर स्वभाव के निवारक और आत्म स्वभाव के साधक हैं, जो शुद्धोपयोग मे रहते है, उन्हे साधु कहते हैं।

प्रश्न—साधु में कितने गुण होते हैं ?

उत्तर—साधु मे २७ गुण पाये जाते हैं, वे इस प्रकार है—

१–५ पाच महाव्रत ६–१० पाचइन्द्रिय दमन ११–१४ चार कषाय निवारण १५ भाव के सच्चे १६ करण के सच्चे १७ योग के सच्चे १८ क्षमावान् १९ वैराग्यवान् २० मन समाहरणता (वश मे करना) २१ वचन समाहरणता २२ कायसमाहरणता २३ ज्ञान सम्पन्नता २४ दर्शन सम्पन्नता २५ चारित्र सम्पन्नता २६ वेदनीय समाअहियासणया—वेदना को समभाव से सहन करना और २७ मारणतिय समाअहियासणया—मारणातिक कष्ट को भी समभावपूर्वक सहन करना।

सिद्ध को छोड़ कर अरिहंत आदि चार साधुपद मे ही है। साधु ही अपनी उत्कृष्ट साधना से अरिहंत आदि पदो को प्राप्त करते हैं। ये साधु अढ़ाई द्वीप भरतादि कर्मभूमियों के १५ क्षेत्रों में ही होते है।

प्रश्न—जघन्य और उत्कृष्ट साधु-साध्वी कितने हो सकते हैं ?

उत्तर—अढाईद्वीप पन्द्रह क्षेत्र में जघन्य दो हजार करोड़ (२०००००००००० अर्थात् बीस अरब) और उत्कृष्ट नव हजार करोड़ (९०००००००००० अर्थात् नव्वे अरव) साधु-साध्वी विचरते है।

अनन्त चौबीसी जिन नमू, सिद्ध अनन्ता करोड़।
केवलज्ञानी गणधरा, वन्दू बे कर जोड़ ॥१॥
दोय करोड़ केवलधरा, विहरमान जिन वीस।
सहस्र युगल कोड़ी नमूँ, साधु नमूँ निश दीस ॥२॥
धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म।
ये समरयां पातक झरे, टूटे आठों कर्म ॥३॥
अरिहंत सिद्ध समरूँ सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरण को, वन्दू शीश नमाय ॥४॥
अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार ॥५॥
लोभी गुरु तारे नहीं, तीरे सो तारनहार।
जो तू तिरनो चाहिवे, तो निर्लोभी गुरुधार ॥६॥

आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे य।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्व खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म निहिय नियचित्तो।
सव्व खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ‡ ॥३॥

कठिन शब्दार्थ—आयरिय—आचार्य पर, उवज्झाए—उपाध्याय पर, सीसे—शिष्य पर, साहम्मिए—सार्धमिक पर, गणे—गण पर, कसाया—कषाय किये हो, खामेमि—खमाता हूँ, सीसे—शिर पर, सव्वस्स—सब, समणसंघस्स—श्रमण संघ से, खमावइत्ता—क्षमा करके, अहयं पि—मैं भी, जीवरासिस्स—जीव राशि से, भावओ—भाव से, धम्मनिहिय नियचित्तो—धर्म में अपने चित्त को स्थिर करके।

भावार्थ—आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, सार्धमिक, कुल और गण पर मैंने जो कुछ भी कषाय भाव किये हो, उन सब की

---

‡ रागेण व दोसेण व अहवा, अकयण्णुणा पडिनिवेसेण।
जं मे किंचि वि भणियं, तमहं तिविहेण खामेमि ॥

अर्थ—राग, द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है उसके लिए मैं मन, वचन, काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ। (किसी किसी प्रति में यह पाठ अधिक है)।

मैं मन, वचन और काया से क्षमा चाहता हूँ ॥१॥

अंजलिवद्ध दोनो हाथ जोड कर समस्त श्रमण संघ से मैं अपने सव अपराधों की क्षमा चाहता हूँ और मैं भी उनके प्रति क्षमा भाव करता हूँ ॥२॥

धर्म में अपने चित्त को स्थिर कर के समस्त जीवराशि से मैं भावपूर्वक अपने अपराधों की क्षमायाचना करता हूँ और मैं भी उनके प्रति क्षमा भाव करता हूँ ॥३॥

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—क्षमा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—क्षमा का अर्थ है-सहनशीलता रखना।

प्रश्न—क्षमा धर्म की उत्कृष्ट विशेषता क्या है ?

उत्तर—किसी के किए अपराध को अंतर्हृदय से भी भूल जाना, दूसरो के अनुचित व्यवहार की ओर कुछ भी लक्ष्य न देना, अपराधी पर अनुराग और प्रेम का मधुर भाव रखना, क्षमा धर्म की उत्कृष्ट विशेपता है।

अढ़ाई द्वीप का पाठ

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में तथा बाहर श्रावक-श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चितारे, जीवादिक नव पदार्थ जाने, श्रावक के इक्कीस गुण कर

के युक्त, एक व्रतधारी जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा मे विचरे, ऐसे बडो से हाथ जोड, पाव पड के क्षमा मागता हूँ। आप क्षमा करे, आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी से क्षमा मागता हूँ।

चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य—ऐसे चार गति मे चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवो मे से किसी जीव का हिलते, चलते, उठते, बैठते सोते, जागते, हनन किया हो, हनन कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो, तो मन वचन काया कर के अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस† (१८२४१२०) प्रकार, जो

† ससारी जीव के ५६३ भेदा को 'अभिहया से जीवियाओ ववरो-विया' जीवो की हिंसा विषयक इन दस पदा से गुणा करने पर ५६३०

मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—जीवयोनि किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं।

उत्तर—जीवो के उत्पत्ति स्थान को 'जीवयोनि' कहते है। अर्थात् जीव जहां पर पैदा होता है उसे 'योनि' कहते हैं और उस स्थान की अपेक्षा से जीव उस जाति का कहा जाता है। कुल चौरासी लाख जीवयोनि है। चौरासी लाख योनि की अपेक्षा से जीवों की जाति भी चौरासी लाख होती है।

प्रश्न—पृथ्वीकाय के सात लाख आदि भेद कैसे होते हैं ?

उत्तर—प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में पृथ्वीकाय आदि के भेदों मे इस प्रकार का पाठ आया है—

भेद होते हैं। हिंसा का कारण राग और द्वेष हैं अत इन भेदो को दो से गुणा करने पर ११, २६०। इन भेदो को मन, वचन और काया इन तीन से गुणा करने पर ३३,७८० भेद होते हैं। विराधना करना, कराना और अनुमोदन रूप से तीन प्रकार से होती है, अत. तीन से गुणन करने पर १,०१,३४० भेद हो जाते हैं। इन भेदो को भूत, भविष्यत् और वर्तमान रूप तीन काल से गुणा करने पर ३,०४,०२० भेद हो जाते हैं। इनको भी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गुरु और निज आत्मा—उक्त छह की साक्षी से गुणन करने पर कुल १८, २४, १२० भेद होते हैं।

अरिहंत, सिद्ध आदि इन छह के स्थान पर किन्हीं किन्ही पुरानी प्रतियो मे ऐसा पाठ भी मिलता है कि दिन में, रात मे, अकेले मे, परिषद् (समूह) मे, सोते और जागते, इन छह से गुणा करने पर १८, २४, १२० भेद होते है।

"तत्थण जे ते पज्जत्तगा एएसिं वण्णादेसेण गधादेसेण रसादेसेण फासादेसेण सठाणादेसेण, सहस्सग्गसो विहाणाइ सखेज्जाइ जोणिप्पमुहत्तयसहस्साइ ।"

अर्थ—इस पृथ्वीकाय के जो पर्याप्तक है उनके वण, गध, रस, स्पश और सस्थान की अपेक्षा से हजारो (दो हजार) भेद होते है । सख्याता लाख योनिया है ।

इस पाठ से स‌ख्या पूर्ति के माग का दिग्दशन होता है । प्रवचनसारोद्धार के १५१ वे द्वार मे ९८२–८३ और ८४ गाथा मे भी इस विषयक वणन है । पृथ्वीकाय के मूल भेद ३५० मानते हैं । इनका नाम निर्देश तो देखने मे नहीं आया परतु उपरोक्त प्रमाणो के आधार मे पृथ्वी आदि के सामान्य भेद १ लाख के पीछे ५० मान कर वर्णादि के साथ (दो हजार) गुणा करने से कथित सख्या होती है । इस अपेक्षा से एक लाख के पीछे ५० लिये जाते हैं ।

जैसे पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय प्रत्येक की सात लाख योनि हैं । उसके मूल भेद ३५०–३५० हुए । मूल भेदों को ५ वण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पश और ५ सस्थान से गुणा करने से योनि के भेद आ जाते हैं । ३५०×५×२×५×८ ×५ = सात लाख । जितनी लाख योनि हैं, उसके अर्द्ध सैकडा मूल भेद मान कर अन्य के लिए भी इसी प्रकार गणना कर लेनी चाहिये ।

क्षमापना का पाठ

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई ॥
एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगुंछियं सम्मं ।
तिविहेणं पडिक्कंतो, वंदामि जिण-चउव्वीसं ॥

कठिन शब्दार्थ—खमंतु–क्षमा करें, सव्वभूएसु–सब जीवों पर, मे–मेरी, मित्ती–मित्रता है, केणइ–किसी के साथ मज्झं–मेरा, वेरं–वैरभाव, एवमहं–इस प्रकार मैं, आलोइय–आलोचना करके, निंदिय–निंदा करके, गरहिय–गर्हा करके, दुगुंछियं–जुगुप्सा करके, तिविहेण–तीन प्रकार से, पडिक्कंतो–पाप कर्म से निवृत्त होकर, चउव्वीसं–चौबीस ।

भावार्थ—मैं सब जीवो को क्षमा करता हूँ वे सब जीव मुझे क्षमा करे। मेरी सब जीवों के साथ मैत्री–मित्रता है किसी के साथ भी मेरा वैर-विरोध नहीं है ।

इस प्रकार मैं सम्यक् आलोचना, निंदा, गर्हा और जुगुप्सा करके तीन प्रकार से अर्थात् मन, वचन और काया से प्रतिक्रमण कर पापों से निवृत्त हो कर चौबीस तीर्थंकर देवों को वंदन करता हूँ ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—निन्दा और गर्हा मे क्या अंतर है ?

उत्तर—"आत्मसाक्षिकी निन्दा, परसाक्षिकी गर्हा"

अर्थात जब साधक आत्मसाक्षी से अपने मन मे अपने पापो की आलोचना करता है, पश्चात्ताप करता है, वह निन्दा है और जब वह गुरुदेव की साक्षी से अथवा किसी दूसरे की साक्षी मे प्रकट रूप मे अपने पापाचरणो को धिक्कारता है, पश्चात्ताप करता है, उसे गर्हा कहते है ।

प्रश्न--जुगुप्सा का क्या अर्थ है ?

उत्तर--जुगुप्सा का अर्थ है-पापो के प्रति पूर्ण घृणा भाव व्यक्त करना । जब तक पापाचार के प्रति घृणा न हो तब तक मनुष्य उससे बच नही सकता ।

पांचवां आवश्यक–कायोत्सर्ग

छह आवश्यक में कायोत्सर्ग पांचवां आवश्यक है। कायोत्सर्ग में दो शब्द हैं–काय और उत्सर्ग। जिसका अर्थ है–काय का त्याग अर्थात् शरीर के ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है। प्रतिक्रमण आवश्यक के बाद कायोत्सर्ग का स्थान है। प्रतिक्रमण के द्वारा व्रतो के अतिचार रूप छिद्रों को बंद कर देने वाला, पश्चात्ताप के द्वारा पाप कर्मों की निवृत्ति करने वाला साधक ही कायोत्सर्ग की योग्यता प्राप्त कर सकता है। जब तक प्रतिक्रमण के द्वारा पापों की आलोचना करके चित्त शुद्धि न की जाय, तब तक धर्मध्यान या शुक्लध्यान के लिए एकाग्रता संपादन करने का, जो कायोत्सर्ग का उद्देश्य है वह किसी तरह भी सिद्ध नही हो सकता। अनाभोग आदि से लगने वाले अतिचारों की अपेक्षा अविवेक, असावधानी आदि से लगे बडे अतिचारों की कायोत्सर्ग शुद्धि करता है। इसीलिये कायोत्सर्ग को पांचवां स्थान दिया गया है।

कायोत्सर्ग एक प्रकार का प्रायश्चित्त है। वह पुराने पापों को धोकर साफ कर देता है। तस्स उत्तरी के पाठ (उत्तरीकरण का पाठ) में यही कहा है कि पाप युक्त आत्मा को श्रेष्ठ–उत्कृष्ट बनाने के लिये, प्रायश्चित्त करने के लिये, विशेष शुद्धि करने के लिये, शल्यों का त्याग करने के लिये, पाप कर्मों

का नाश करने के लिये कायोत्सग–शरीर के व्यापारो का त्याग–किया जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र मे कायोत्सग आवश्यक का नाम 'व्रत-चिकित्सा' कहा है। व्रत रूप शरीर मे अतिचार रूप व्रण (घाव, फोडे) के लिए पाचवा कायोत्सग आवश्यक चिकित्सा रूप पुल्टिस(मरहम) का काम करता है। जैसे पुल्टिस, फोडे के विगडे हुए रक्त को मवाद बना कर निकाल देता है और फोडे की पीडा को शान्त कर देता है, उसी प्रकार, यह काउस्सग्ग रूप पाचवा आवश्यक, व्रत मे लगे हुए अतिचारो के दोषो को दूर कर आत्मा को निर्मल एव शात बना देता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवे अध्ययन मे कायोत्सर्ग का फल इस प्रकार कहा है –

"काउस्सग्गेण भते ! जीवे किं जणयइ।"

––हे भगवन् ! कायोत्सर्ग करने से जीव को किन गुणों की प्राप्ति होती है ? इसके उत्तर मे भगवान् फरमाते हैं कि–

"काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पण्ण पायच्छित्त विसोहेइ विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे णिव्वुयहियए ओहरिय भरव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुह सुहेण विहरइ।"

—कायोत्सग करने से भूतकाल और वतमान काल के दोषो का प्रायश्चित्त करके जीव शुद्ध वनता है और जिस प्रकार बोझ उतर जाने से मजदूर सुखी होता है उसी प्रकार प्रायश्चित्त से विशुद्ध बना हुआ जीव शान्त हृदय बन कर

शुभ ध्यान ध्याता हुआ सुखपूर्वक विचरता है।

विधि--पांचवें आवश्यक में **प्रायच्छित्त का पाठ**, एक **नवकार, करेमि भंते, इच्छामि ठामि** और **तस्स उत्तरी** का पाठ बोल कर लोगस्स‡ का काउस्सग्ग करे। '**नमो अरिहंताणं**' कह कर काउस्सग्ग पारे। काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोल कर एक लोगस्स प्रकट कह कर दो बार '**इच्छामि खमासमणो**' बोले। फिर वंदना करके छठे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

प्रायश्चित्त का पाठ

देवसिय पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

कठिन शब्दार्थ—**पायच्छित्त**-प्रायश्चित, **विसोहणत्थं**-विशुद्धि के लिये।

भावार्थ--मै दिवस संबंधी प्रायश्चित की शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ।

---

‡ देवसिय राइय प्रतिक्रमण मे ४, पक्खी प्रतिक्रमण मे १२, चौमासी प्रतिक्रमण मे २० और सवत्सरी प्रतिक्रमण मे ४० लोगस्स का काउस्सग्ग करना चाहिये। (आवश्यक सूत्र)

नोट---चौमासी और संवत्सरी के दिन दो प्रतिक्रमण करे (ज्ञाता सूत्र अध्ययन ५)। प्रथम प्रतिक्रमण दिवस सवधी चार आवश्यक तक ही करे बाद मे चौमासिक या सावत्सरिक प्रतिक्रमण की आज्ञा ले कर दूसरे प्रतिक्रमण मे छहो आवश्यक करे, जिसमे 'देवसी' शब्द नही कह कर 'चौमासी' या 'संवत्सरी' कहे।

छठा आवश्यक-प्रत्याख्यान

छह आवश्यक में प्रत्याख्यान छठा आवश्यक है। प्रत्याख्यान का सामान्य अर्थ है-त्याग करना। प्रत्याख्यान में तीन शब्द हैं-प्रति + आ + आख्यान। अविरति एवं असयम के प्रति अर्थात् प्रतिकूल रूप में 'आ' अर्थात् मर्यादा स्वरूप आकार के साथ 'आख्यान' अर्थात् प्रतिज्ञा को 'प्रत्याख्यान' कहते हैं। अथवा अमुक समय के लिए पहले से ही किसी वस्तु के त्याग कर देने को 'प्रत्याख्यान' कहते हैं। अविवेक आदि से लगने वाले अतिचारो की अपेक्षा जानते हुए दप आदि से लगे बडे अतिचारो की प्रत्याख्यान शुद्धि करता है अत प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया गया है। अथवा प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग के द्वारा अतिचार की शुद्धि हो जाने पर प्रत्याख्यान द्वारा तप रूप नया लाभ होता है अत प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया है।

जो साधक कायोत्सर्ग द्वारा विशेष चित्त शुद्धि, एकाग्रता और आत्म बल प्राप्त करता है, वही प्रत्याख्यान का सच्चा अधिकारी है। अर्थात् प्रत्याख्यान के लिए विशिष्ट चित्त-शुद्धि और विशेष उत्साह की अपेक्षा है जो कायोत्सर्ग के बिना सभव नही है अत कायोत्सर्ग के पश्चात प्रत्याख्यान को स्थान दिया गया है।

अनुयोगद्वार सूत्र म प्रत्याख्यान का नाम 'गुणधारण' कहा है। गुणधारण का अर्थ है-व्रत रूप गुणो को धारण करना।

प्रत्याख्यान के द्वारा आत्मा, मन, वचन, काया को दुष्ट प्रवृत्तियों से रोक कर शुभ प्रवृत्तियों पर केन्द्रित करता है। ऐसा करने से इच्छा निरोध, तृष्णा का अभाव, सुखशांति आदि अनेक सद्गुणों की प्राप्ति होती है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन मे प्रत्याख्यान का फल इस प्रकार बताया है—

'पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?'

–हे भगवन् ! प्रत्याख्यान मे जीव को क्या लाभ है ? इसके उत्तर मे प्रभु फरमाते हैं कि—

"पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं णिरुंभइ, पच्चक्खाणेणं इच्छा णिरोहं जणयइ, इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ।"

——प्रत्याख्यान करने से आश्रवद्वारो का निरोध होता है, प्रत्याख्यान करने से इच्छा का निरोध होता है, इच्छा का निरोध होने से जीव सभी पदार्थों मे तृष्णा रहित बना हुआ परम शांति से विचरता है।

विधि— छठे आवश्यक में खड़े हो कर साधुजी महाराज से* अपनी शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करे। यदि साधुजी महाराज न हो, तो बडे श्रावकजी से पच्चक्खाण करे। यदि वे भी नहीं हो तो स्वयमेव **"गंठिसहियं मुट्ठिसहियं"** की पाटी

* श्राविकाए–साध्वीजी महाराज से अथवा बडी श्राविका से पच्चक्खाण करे। यदि वे न हो, तो फिर स्वयमेव पच्चक्खाण करे।

बोल कर पच्चक्खाण करे। 'प्रतिक्रमण का समुच्चय पाठ' बोल कर दो बार 'नमोत्थुण' कहे। फिर वन्दना कर के अपने स्वधर्मी भाइयो को खमावे। फिर चौबीसी और स्तवन आदि बोले।

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं साड्ढ पोरिसियं तिविहंपि चउविहंपि आहार-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अपनी-अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि*।

कठिन शब्दार्थ—गठिसहियं-गाठ सहित-जब तक गाठ बधी रखू तब तक, मुट्ठिसहियं-मुट्ठी सहित-जब तक मैं मुट्ठी बद रखू, नमुक्कारसहियं-नमस्कार मत्र बोलकर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त (४८ मिनट) तक का त्याग पोरिसियं--एक पहर का त्याग, साड्ढ पोरिसीयं-डेढ पहर का त्याग, अण्णत्थणाभोगेणं-बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो, सहसागारेणं-अकस्मात् जैसे पानी वरसता हो और मुख मे छीटे पड जावे या छाछ बिलोते समय मुह मे छीटे पड जावे तो मेरे आगार है, महत्तरागारेणं-महापुरुषो के आगार

* जब स्वयं पच्चक्खाण करना हो, तब 'वोसिरामि' ऐसा बोले और जब दूसरे को पच्चक्खाण कराना हो, तो 'वोसिरे' ऐसा बोले।

से अर्थात् महापुरुषों और गुरुजनों के निमित्त से त्याग को भंग करना पड़े तो इसका मेरे आगार है, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं—सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर मे भयंकर रोग हो जाय तो दवाई आदि का आगार है।

भावार्थ—जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक या मुट्ठी बंद रखू तब तक या सूर्योदय से ४८ मिनिट तक या एक पहर तक या डेढ़ पहर तक अशन, खादिम, स्वादिम, इन तीनों प्रकार के आहारों का आगार रख कर त्याग करता हूं। आगार हैं—प्रत्याख्यान का उपयोग न रहने से या अकस्मात् कुछ खाने पीने में आ जाय अथवा गुरुजनों की आज्ञा से कुछ खाना पीना पड़ें तो मेरे आगार है तथा स्वस्थ अवस्था में मेरे यह त्याग है अस्वस्थ होने पर आवश्यक औषधि अनुपान आदि का मेरे आगार है।

प्रतिक्रमण का समुच्चय पाठ

पहला सामायिक, दूसरा चौवीसत्थव, तीसरा वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पांचवां कायोत्सर्ग, छठा प्रत्याख्यान, इन छह आवश्यकों में जानते, अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो और पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर न्यूनाधिक आगे

पीछे कहा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभयोग का प्रतिक्रमण, इन पांच प्रतिक्रमण मे से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

शम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था, ये व्यवहार-समकित के पाच लक्षण हैं । इनको मैं धारण करता हूँ ।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का सवर और भविष्य (आगामी) काल का पच्चक्खाण, इसमे जो कोई दोष लगा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

देव अरिहत, गुरु निर्ग्रंथ, केवली भाषित दयामय धर्म ये तीन तत्त्व सार, ससार असार, भगवत महाराज आपका मार्ग सच्च सच्च सच्च । थव थुई मगल।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण किस पाठ से होता है ?

उत्तर—मुख्यतया 'दर्शन सम्यक्त्व' के पाठ से और अठारह पापस्थान के मिथ्यादर्शन शल्य आदि पाठ से मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता है ।

प्रश्न—अव्रत का प्रतिक्रमण किससे होता है ?

उत्तर—इच्छामि ठामि के 'पचण्हमणुव्वयाणं' पाठ से पाच

अणुव्रतों का तथा अठारह पापस्थान के प्राणातिपात, मृषावाद अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह के पाठ से अव्रत का प्रतिक्रमण होता है।

प्रश्न—प्रमाद और अशुभ योग का प्रतिक्रमण किन पाठों से होता है ?

उत्तर—मुख्यतया इच्छामि ठामि के 'तिण्हं गुत्तीणं' आदि पाठ से, गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों के पाठ से तथा अठारह पापस्थान के कलह आदि पाठ से प्रमाद और अशुभयोग का प्रतिक्रमण होता है।

प्रश्न—कषाय का प्रतिक्रमण किन पाठों से होता है ?

उत्तर—मुख्यतया 'इच्छामि ठामि' के 'चउण्हं कसायाणं' के पाठ से तथा अठारह पापस्थान के क्रोध, मान, माया, लोभ आदि पाठ से कषाय का प्रतिक्रमण होता है।

प्रश्न—आगामी काल के प्रत्याख्यान का प्रतिक्रमण कैसे होता है ?

उत्तर—यदि आगामी काल के प्रत्याख्यान श्रद्धा, विनय और शुद्ध भाव से धारण न किये हो तो उनका प्रतिक्रमण होता है।

प्रत्याख्यान सूत्र

नवकारसी

उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं पच्चक्खामि, चउव्विहं

पि आहार—असण, पाण, खाइम, साइम । अन्नत्यणा-भोगेण, सहसागारेण, वोसिरामि ।

भावार्थ-सूर्य उदय होने पर-दो घडी दिन चढे तक-नमस्कार सहित प्रत्याख्यान ग्रहण करता हूँ और अशन, पान खादिम, स्वादिम चारों ही प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ । अनाभोग-अत्यन्त विस्मृति या प्रत्याख्यान का उपयोग न रहने से और सहसाकार-शीघ्रता मे या अचानक कुछ खाने पीने में आ गया हो तो इन दो आगारो के सिवाय चारो आहार वोसिराता हूँ—त्याग करता हूँ ।

पौरुषी

उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहार-असण, पाणं, खाइम, साइम । अन्नत्यणाभोगेणं, सहसागारेण, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

भावार्थ-सूर्योदय से पौरुषी (प्रहर दिन तक) का प्रत्याख्यान करता हूँ । अशन, पान, खादिम, स्वादिम, चारो ही आहार का अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिशामोह, साधुवचन, सर्व-समाधिप्रत्ययकार आगारो के सिवाय त्याग करता हूँ ।

पूर्वार्द्ध

उग्गए सूरे पुरिमड्ढ पच्चक्खामि, चउव्विह पि

आहारं—असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ—सूर्योदय से लेकर दिन के पूर्वार्ध तक अर्थात् दो प्रहर तक चारों आहार अशन, पान, खादिम, स्वादिम का प्रत्याख्यान करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिशामोह, साधुवचन, महत्तराकार और सर्वसमाधिप्रत्ययाकार—उक्त सात आगारों के सिवाय पूर्णतया आहार का त्याग करता हूँ।

एकासन

एगासणं पच्चक्खामि, तिविहं× पि आहारं—असणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आउंटणपसारणेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ—एकासन तप स्वीकार करता हूँ फलतः अशन, खादिम स्वादिम तीनों आहारों का प्रत्याख्यान करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, आकुञ्चनप्रसारण, गुर्वभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्वसमाधि

×यदि चौविहार करना हो, तो 'चउव्विहं' कह कर 'असणं' के बाद 'पाणं' भी कहना चाहिए।

प्रत्ययाकार–उक्त आठ आगारो के सिवा पूणतया आहार का त्याग करता हूँ।

एकस्थान (एकलठाणा)

एगासण एगट्ठाण पच्चक्खामि, तिविह × पि आहार-असण, खाइम, साइम । अन्नत्थणाभोगेण, सहसागारेण, सागारियागारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेण, पारिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

भावार्थ––एकाशन रूप एकस्थान = एक आसन से स्थित होकर भोजन करने का व्रत ग्रहण करता हूँ। फलत अशन, खादिम और स्वादिम, तीनो आहार का त्याग करता हूँ। अनाभोग, महसाकार, सागारिकाकार गुवभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सवसमाधि-प्रत्ययाकार-उक्त सात आगारो के सिवा पूणतया आहार का त्याग करता हूँ।

आयम्बिल

आयबिल पच्चक्खामि, अन्नत्थणाभोगेण, सहसागारेण, लेवालेवेण, उक्खित्तविवेगेण, गिहत्थसंसट्ठेण, पारिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-

---

×यदि चौविहार करना हो, तो 'चउव्विह' कह कर 'असण' के बाद 'पाण' भी कहना चाहिए।

वत्तियागारेणं वोसिरामि ।

भावार्थ—आज के दिन आयंबिल अर्थात् आचाम्ल तप ग्रहण करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, उत्क्षिप्त विवेक, गृहस्थ संसृष्ट, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्व-समाधि प्रत्ययाकार—उक्त आठ आगारों के अतिरिक्त आहार का त्याग करता हूँ।

चौविहार उपवास

उग्गए सूरे, अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं—असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ—सूर्योदय से उपवास ग्रहण करता हूं। फलतः अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारो ही प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिकाकार, मह-त्तराकार, सर्वसमाधि-प्रत्ययाकार—उक्त पांच आगारो के सिवाय सब प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ।

तिविहार उपवास

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, तिविहं पि आहारं—असणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं,

सहसागारेण, पारिट्ठावणियागारेण †, महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण पाणस्स लेवाडेण वा अलेवाडेण वा अच्छेण वा बहुलेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरामि।

भावार्थ–सूर्योदय से उपवास ग्रहण करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्व समाधि प्रत्ययाकार के सिवाय अशन, खादिम, स्वादिम तीनों ही आहार एवं लेवाड (लेपकृत)–दाल आदि का माड, इमली, खजूर, दाख आदि का धोवन, अलेवाडे (अलेपकृत)–छाछ आदि का निथरा हुआ पानी (आछ) और काजी आदि का पानी अच्छ–गर्म किया हुआ स्वच्छ पानी, बहल–तिल, चावल, जौ आदि के ओसामण का पानी, ससित्थ–आटे आदि से भरे हुए हाथ तथा पात्र का कण से युक्त धोवन, असित्थ–आटे आदि से भरे हुए पात्र आदि का कण से रहित छना हुआ धोवन के सिवाय पानी का त्याग करता हूँ।

दिवसचरिम

दिवसचरिम पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहार–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

---

† 'पारिट्ठावणियागारेण' श्रावक को नहीं बोलना चाहिए।

भावार्थ—दिवस चरम का व्रत ग्रहण करता हूं फलतः अशन, पान, खादिम और स्वादिम चारों आहार का त्याग करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्वसमाधिप्रत्ययाकार—उक्त चार आगारों के सिवाय आहार का त्याग करता हूं।

अभिग्रह

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं—असणं पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ—अभिग्रह का व्रत ग्रहण करता हूँ, फलतः अशन, पान, खादिम और स्वादिम चारों ही आहार का (सकल्पित समय तक) त्याग करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्वसमाधिप्रत्ययाकार—उक्त चार आगारो के सिवा अभिग्रहपूर्ति तक चार आहार का त्याग करता हूं।

निर्विकृतिक (निवी)

विगइओ पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ—विगयो का प्रत्याख्यान करता हूँ। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थसंसृष्ट, उत्क्षिप्तविवेक, प्रतीत्य-

प्रक्षित, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सवसमाधिप्रत्यया-कार उक्त नौ आगारो+के सिवाय विगय का त्याग करता हूँ।

(प्रवचनसारोद्धार द्वार ४ गा २०१)

(हरि० आवश्यक अ ६ नियुक्ति गा १५९७ पृ ८५१)

प्रत्याख्यान पारने का पाठ

उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं‡ पच्चक्खाण कय त पच्चक्खाण सम्म काएण, न फासिय, न पालिय, न तीरिय, न किट्टिय, न सोहिय, न आराहिय, न आणाए अणुपालिय न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

भावार्थ–सूर्योदय होने पर जो नवकारसी आदि प्रत्याख्यान किया था वह प्रत्याख्यान काया के द्वारा सम्यक रूप मे स्पृष्ट, पालित, तीरित, कीर्तित, शोधित और आराधित नही किया हो, आज्ञा की अनुपालना न की हो तो उसका दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हो।

दया के पच्चक्खाण

द्रव्य से हिंसा आदि पांच आश्रव, क्षेत्र से लोक प्रमाण क्षेत्र मे, काल से सूर्योदय तक, भाव से एक करण

+ ये सब आगार मुख्य रूप मे साधु के लिए कहे गए है। श्रावक को अपनी मर्यादानुसार स्वय समझ लेने चाहिए।

‡ 'नमुक्कारसहियं' के स्थान पर जो प्रत्याख्यान ग्रहण कर रखा हो, उसका नाम लेना चाहिये।

क्या है ?

उत्तर—'पौरुषी आ गई' इस प्रकार किसी आप्त पुरुष के कहने पर विना पोरुषी आए ही पौरुषी पार लेना, पौरुषी का यह साधुवचन नामक पांचवां आगार है।

प्रश्न—सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (सर्व समाधि प्रत्ययाकार) का क्या अर्थ है ?

उत्तर—तीव्र रोग की उपशांति के लिए औषध आदि ग्रहण करने के निमित्त निर्धारित समय के पहले ही पच्चक्खाण पार लेना 'सर्वसमाधिप्रत्ययाकार' कहलाता है।

प्रश्न—महत्तरागारेणं (महत्तराकार) का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विशेष निर्जरा आदि को ध्यान में रख कर रोगी आदि की सेवा के लिये अथवा किसी अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए गुरुदेव आदि महत्तर पुरुष की आज्ञा पाकर निश्चित समय के पहले ही प्रत्याख्यान पार लेना, महत्तराकार है।

प्रश्न—एकासन किसे कहते है ?

उत्तर—पौरुपी या दो पौरुपी के वाद दिन में एक वार एक आसन से बैठकर भोजन करने को एकासन कहते है। यदि दो वार भोजन किया जाय तो बियासन पच्चक्खाण हो जाता है। एकासन और वियासन में अचित्त भोजन एवं अचित्त पानी का ही सेवन किया जाता है।

प्रश्न—सागारियागारेणं (सागारिकाकार) का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिनके देखने से आहार करने की शास्त्र में मनाही है, उनके उपस्थित हो जाने पर स्थान छोड़ कर

दूसरी जगह चले आना सागारियागारेण आगार है।

प्रश्न—आउट ासारणेण (आकुञ्चनप्रसारण) का क्या अथ है ?

उत्तर—सुन्न पड जाने आदि कारण से हाथ पैर आदि अगो को सिकोडना या फैलाना आकुञ्चन प्रसारण आगार है।

प्रश्न—गुरुअब्भुट्ठाणेण (गुवभ्युत्थान) का क्या अथ है ?

उत्तर—गुरुजन अथवा किसी अतिथि विशेष के आने पर उनका विनय सत्कार करने उठना, खडे होना गुर्व्भ्युत्थान आगार है।

प्रश्न—पारिट्ठावणियागारेण (पारिष्ठापनिकाकार) का क्या आशय है ?

उत्तर—अधिक हो जाने के कारण जिम आहार को परठवना पडता हो, तो परठवने के दोप से बचने के लिए उस आहार को गुरु की आज्ञा मे ग्रहण कर लेना 'पारिट्ठावणियागारेण' आगार है।

नोट—पारिट्ठावणिया आगार साध के लिए ही है, श्रावक के लिए नही।

प्रश्न—एकस्थान (एक्लठाणा) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हाथ और मुह के सिवाय शेष अगो को बिना हिलाए दिन मे एक ही बार भोजन करने को एगट्ठाण (एकस्थान) पच्चक्खाण कहते हैं। भोजन प्रारम्भ करते समय जिस आसन से बैठे, अंत तक वैसे ही बैठे रहना चाहिये। एकासन की तरह एक्लठाणा मे हाथ पैर हिलाने का आगार नहीं रहता।

प्रश्न—आयबिल तप क्या है ?

उत्तर—दिन में एक बार लवणरहित रूक्ष, नीरस और विगय रहित आहार करने को आयंविल कहते हैं। दूध, दही, घी, तेल, गुड, शक्कर, पकवान्न आदि किसी प्रकार का स्वादु भोजन आयबिल तप में ग्रहण नही किया जा सकता।

प्रश्न—लेवालेवेणं (लेपालेप) आगार क्या है ?

उत्तर—लेप का अर्थ है—घृतादि से लिप्त होना और अलेप का अर्थ है—बाद मे उसको पोंछ कर अलिप्त कर देना। आयंबिल व्रत मे ग्रहण न करने योग्य शाक तथा घृत आदि से यदि पात्र अथवा हाथ आदि लिप्त हो और दाता गृहस्थ यदि उसे पोंछ कर उसके द्वारा आयंबिल योग्य भोजन बहराए तो ग्रहण कर लेने पर व्रत भंग नही होता।

प्रश्न—उक्खित्त-विवेगेणं (उत्क्षिप्त—विवेक) का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उत्क्षिप्त का अर्थ उठाना है और विवेक का अर्थ है—हटाना—उठाने के बाद उसका न लगा रहना। शुष्क ओदन एवं रोटी आदि पर गुड या शक्कर आदि पहले रखे हुए हों उन्हे उठा कर रोटी आदि देना चाहे तो उसे ग्रहण की जा सकती है। यह 'उक्खित्त विवेगणं' आगार है।

प्रश्न—गिहत्थसंसट्ठेणं (गृहस्थ संसृष्ट) आगार क्या है ?

उत्तर—गिहत्थसंसट्ठेणं (गृहस्थ संसृष्ट) आगार के अंतर्गत घी, तेल आदि के चिकने हाथों से गृहस्थ द्वारा दिया हुआ आहार पानी तथा दूसरे चिकने आहार का जिसमें लेप लग गया हो ऐसा आहार पानी लिया जा सकता है।

प्रश्न—अभत्तट्ठ (उपवास) पच्चक्खाण क्या है ?

उत्तर—अभक्तार्थ का अर्थ है–भक्त (भोजन) का प्रयोजन नहीं है जिस व्रत में वह अभक्तार्थ अर्थात् उपवास । उपवास का पच्चक्खाण दो प्रकार का है–१ सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक चारों आहार का त्याग चौविहार उपवास कहलाता है २ पानी का आगार रख कर तीन आहारों का त्याग करना तिविहार उपवास है ।

प्रश्न—चरिम पच्चक्खाण कितने प्रकार का है ?

उत्तर—चरिम पच्चक्खाण दो प्रकार का है–

१ दिवस चरिम–सूर्य अस्त होने से पहले दूसरे दिन सूर्योदय तक चारों या तीनों आहारों का त्याग करना दिवस चरिम पच्चक्खाण है ।

२ भवचरिम–पच्चक्खाण करने के समय से लेकर यावज्जीव आहारों का त्याग करना भवचरिम पच्चक्खाण है ।

प्रश्न—अभिग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—उपवास के बाद या बिना उपवास के अपने मन में निश्चय कर लेना कि अमुक बातों के मिलने पर ही पारणा या आहारादि ग्रहण करूँगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहते हैं । अभिग्रह में जो बात धारण करनी हो उसे मन में या वचन द्वारा निश्चय कर लेने के बाद पच्चक्खाण किया जाता है ।

प्रश्न—निर्विकृतिक (निवि) किसे कहते हैं ?

उत्तर—विगयों के त्याग को निव्विगइ (निर्विकृतिक-

निवि) कहते है ।

प्रश्न—पडुच्चमक्खिएणं (प्रतीत्यम्रक्षित) आगार क्या है ?

उत्तर—भोजन वनाते समय जिन रोटी आदि वस्तुओ पर सिर्फ अगुली मे घी, तेल आदि लगा हो, ऐसी वस्तुओं को लेना प्रतीत्यम्रक्षित आगार कहलाता है ।

प्रश्न—प्रत्याख्यान पालने के छह अंग कौन-कौन से है ?

उत्तर—छह अंगो से प्रत्याख्यान की आराधना करनी चाहिए—

१ **फासियं** (स्पृष्ट या स्पर्शित)–गुरुदेव से या स्वयं विधि पूर्वक प्रत्याख्यान लेना ।

२ **पालियं** (पालित)–प्रत्याख्यान को वार-वार उपयोग में लाकर सावधानी के साथ उसकी सतत रक्षा करना ।

३ **तीरियं** (तीरित)–लिए हुए प्रत्याख्यान का समय पूरा हो जाने पर भी कुछ समय ठहर कर भोजन करना ।

४ **किट्टियं** (कीर्तित)–भोजन आदि प्रारम्भ करने से पहले लिये हुए प्रत्याख्यान को विचार कर निश्चय कर लेना कि मैंने अमुक प्रत्याख्यान किया था, वह अव भलीभांति पूरा हो गया है।

५ **सोहियं** (शोभित)–गुरु को भोजन देकर स्वयं भोजन करना ।

६ **आराहियं** (आराधित)–सव दोषो से दूर रहते हुए ऊपर कही हुई विधि के अनुसार प्रत्याख्यान को पूरा करना।

॥ षडावश्यक सम्पूर्ण ॥

श्री चौबीसी—स्तवन

(तर्ज—देख तेरे ससार की हालत)

जय जिनवर ! जय तीर्थंकर ! जय चौबीसी भगवान् ।
साधु-श्रावक करे प्रणाम २ ।
आप तिरे, औरो को तारे, भरत क्षेत्र भगवान् ।
साधु श्रावक करे प्रणाम २ ॥टेर॥

१ ऋषभदेव का कीर्तन करते, २ अजितनाथ को वदन करते ।
३ सभवनाथ का नाम सुमरते, ४ अभिनदन को चित्त मे धरते ॥
५ जय सुमति, ६ जय पद्मप्रभ, जय चौबीसी भगवान् ॥ साधु
७ सुपार्श्वनाथ का कीर्तन करते, ८ चद्रप्रभ को वदन करते ।
९ सुविधिनाथ का नाम सुमरते, १० शीतलप्रभु को चित्त मे धरते ।
११ जय श्रेयास जय वासुपूज्य, १२ जय चौबीसी भगवान् ॥साधु
१३ विमलनाथ का कीर्तन करते, १४ अनतनाथ को वदन करते ।
१५ धर्मनाथ का नाम सुमरते, १६ शातिनाथ को चित्त मे धरते ।
१७ जय कुथु १८ जय अरनाथ, जय चौबीसी भगवान् ॥ साधु
१९ मल्लिनाथ का कीर्तन करते, २० मुनिसुव्रत को वदन करते ।
२१ नमिनाथ का नाम सुमरते, २२ अरिष्टनेमि को चित्त मे धरते ।
२३ जय पारस, २४ जय महावीर, जय चौबीसी भगवान् ॥साधु
अनत सिद्ध का कीर्तन करते, विहरमान को वदन करते ।
गणधर प्रभु का नाम सुमरते, गुरुदेव को चित्त मे धरते ॥
केवल शिष्य विनय करता, जय चौबीसी भगवान् ॥ साधु

विशेष प्रश्नोत्तर

१ प्रश्न—प्रतिक्रमण में वायां घुटना और दाहिना घुटना ऊपर रखने का ही विधान क्यों वताया गया है ?

उत्तर—वायां घुटना ऊपर रखना विनय प्रतिपत्ती का कारण है। आगमों में जहां जहां णमोत्थुणं देने का वर्णन है वहां नम्रता प्रदर्शन करने के आसन रूप वायें घुटने को ऊपर रखना वताया है। दाहिना घुटना ऊपर रखना वीरता का द्योतक है। व्रतों की आलोचना वीरता पूर्वक की जाती है अतः दाहिना घुटना ऊपर रखने का विधान बताया है।

२ प्रश्न—दो प्रतिक्रमण की परम्परा की आधारशिला क्या है ?

उत्तर—यह तो सुविदित ही है कि चातुर्मासिक पर्व से सांवत्सरिक पर्व वड़ा एवं महत्त्वपूर्ण है। जब चातुर्मासिक पर्व में भी मध्यम तीर्थकरों के साधु भी जिनके लिए सप्रतिक्रमण धर्म वताया ही नहीं गया, वे पंथकजी (ज्ञाता सूत्र अध्ययन ५) भी देवसिय प्रतिक्रमण कर लेने के वाद चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करते हैं तव सप्रतिक्रमण धर्म वाले प्रथम अंतिम तीर्थंकरों के शासन वाले साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के लिए चातुर्मासिक एव सांवत्सरिक पर्व में दोनों प्रतिक्रमण करना सहज सिद्ध हो जाता है।

प्राचीन ग्रंथ भी इस वात को स्पष्ट करते हैं। सहस्राधिक वर्ष पुराने प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रंथों में तथा उनकी

प्राचीन टीकाओ मे बिना मतान्तर के दिखाए दो प्रतिक्रमण के उल्लेख एव चालीस आदि लोगस्स के उल्लेख पाते है तब यह सहज ही ध्यान मे आ जाता है कि आगमकालीन परपरा दो प्रतिक्रमण करने की रही है। पूरा मूर्तिपूजक समाज इसका साक्षी है। उनमे आज भी यह परपरा अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

आवश्यक सूत्र दूसरे भाग मे जिसका अनुवाद पूज्य श्री आतमारामजी म सा ने किया है और जो वीर सवत् २४४३ मे प्रकाशित हुआ है उसमे भी दो प्रतिक्रमण व चालीस लोगस्स का उल्लेख पाते हैं।

स्थानकवासी समाज की पूर्व परपराओ मे भी प्राचीन परपरा दो प्रतिक्रमण की रही है जो अनेक कारणो से अनेक परिस्थितियो से एक प्रतिक्रमण के रूप मे परिवर्तित हो गयी है। प्राचीन इतिहास से भी दो प्रतिक्रमण की परपरा आगमकालीन ही ध्यान मे आती है अत सावत्सरिक पर्वादि पर दो प्रतिक्रमण करना आचार्य प्रवर्तित न हो कर आगमकालीन ही ध्यान मे आता है।

३ प्रश्न—चौमासिक और साम्वत्सरिक प्रतिक्रमण दो दो करते हैं उसमे पहला प्रतिक्रमण चौथे आवश्यक तक ही किया जाता है इसका क्या कारण है ?

उत्तर—दो प्रतिक्रमण करते समय पहला प्रतिक्रमण चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक तक ही किया जाता है और दूसरे प्रतिक्रमण मे छहों आवश्यक पूर्ण किये जाते हैं।

प्रतिक्रमण, व्रतादि में लगे हुए दोषों की आलोचना करने के लिए हैं सो अतिचारों की आलोचना चौथे आवश्यक तक पूर्ण हो जाती है। इसलिये प्रथम प्रतिक्रमण चौथे आवश्यक तक ही किया जाता है। अतिचारों के कारण आत्मा में मलिनता आगयी थी, उसे दूर करके शुद्धि करने के लिये पाचवां आवश्यक है और छठा आवश्यक भविष्यकाल से संबंध रखता है। इसलिये पीछे के दोनो आवश्यक बाद मे किये जाते हैं। श्री अनुयोगद्वार सूत्र में पांचवे आवश्यक का नाम 'वणतिगिच्छा' अर्थात् फोड़े का इलाज लिखा है। चारित्र रूपी पुरुष के अतिचार रूपी भाव व्रण (फोडे) को मिटाने के लिए दवाई रूप पाचवा आवश्यक है। छठे आवश्यक का नाम 'गुणधारणा' है। पहले के दोषों की आलोचना करने रूप चौथे आवश्यक तक पहला प्रतिक्रमण और दूसरे में छहो आवश्यक करना ठीक है। आवश्यक भाष्य और प्रवंचनसारोद्धार आदि मे भी अतिचारो तक कहने का उल्लेख है।

४ **प्रश्न**—ध्यान और काउस्सग्ग मे क्या अतर है?

उत्तर—काया की प्रवृत्तियो को रोकना 'कायोत्सर्ग' है और चित्त की एकाग्रता को 'ध्यान' कहते है। कायोत्सर्ग का समय नियमित (निश्चित) होता है और ध्यान का समय नियमित (निश्चित) नही होता है।

५ **प्रश्न**—श्रावक जब प्रतिक्रमण करते है तो पहले सामायिक लेते समय चउवीसथव करते ही है फिर प्रतिक्रमण में दुबारा पहला सामायिक आवश्यक रूप चउवीसथव करने की

सचित्त त्याग, अचित्त रख, उत्तरासंग कर जोड़ ।
कर एकाग्र चित्त को, सब झंझट को छोड़ ।।

७ प्रश्न—क्या दसवें व्रत मे 'पौषध' लिया जा सकता है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि दसवें व्रत में पौषध शब्द ही नही है । पौषध के चार भेद बतलाये गये है यथा—

आहार तनु सत्काराब्रह्म, सावद्य कर्मणाम् ।
त्यागः पर्व दिवसेषु तदविदुः पौषध व्रतम् ।।

१ आहार त्याग पौषध—तीन प्रकार के अथवा चार प्रकार के आहार का त्याग करना आहार त्याग पौषध है ।

२ शरीर सत्कार (शुश्रूषा) त्याग पौषध—स्नान, ऊबटन, फूल, गंध आभरण रूप शरीर सत्कार (शुश्रूषा-विभूषा) का त्याग करना शरीर सत्कार त्याग पौषध है ।

३अब्रह्म (कुशील) त्याग नौषध—अब्रह्म (कुशील-मैथुन) का त्याग करना कुशील त्याग (ब्रह्मचर्य) पौषध है ।

४ सावद्य त्याग पौषध—खेती, व्यापार आदि सावद्य कार्यों का त्याग करना सावद्य त्याग पौषध है ।

ये चार प्रकार के पौषध ग्यारहवें व्रत में आते है, दसवे व्रत में नहीं । दसवें व्रत में तो चौदह नियमों के द्वारा मर्यादा की जाती है इसलिए दसवां पौषध कोई होता ही नही है ।

८ प्रश्न—बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह के कितने भेद है ?

उत्तर—बाह्य परिग्रह (द्रव्य ग्रंथि) के नो भेद है—१ क्षेत्र—खुली जमीन खेत मैदान आदि २ वास्तु—ढकी जमीन अर्थात् घर दुकान हवेली बंगला आदि ३ चांदी ४ सोना ५ धन—

रुपया, जेवर आदि ६ धान्य–गेहू, जो आदि २४ प्रकार के धान्य ७ द्विपद–दास दासी,नौकर, चाकर आदि ४ चतुष्पद–हाथी, घोडा, गाय, भस आदि ८ कुविय (कुप्य)–घर बिखरी की चीजें जैसे–टेबल, मेज, कुर्सी, पलग, विस्तर, रजाई आदि तथा लोह, कासी, पीतल आदि के बत्तन तथा वस्तुएँ।

आभ्यतर परिग्रह (भाव ग्रथि) के चौदह भेद हैं–१ मिथ्यात्व, २ क्रोध, ३ मान, माया, ५ लोभ ६ हास्य ७ भय ८ शोक ९ रति १० अरति ११ जुगुप्सा (दुगुछा) १२ स्त्री-वेद १३ पुरुषवेद और १४ नपुसकवेद।

९ प्रश्न—बिना पौषध किये हुए श्रावक, नित्य प्रतिक्रमण मे पौषध के अतिचार क्यो कहते हैं ?

उत्तर—जिस प्रकार बिना सलेखना किये ही सलेखना के अतिचार कहते हैं, उसी प्रकार पौषध के भी कहते हैं। श्रद्धा प्ररूपणा तो है ही, श्रावक कहते भी हैं कि "इस व्रत की श्रद्धा प्ररूपणा रूप तो है, परन्तु स्पशना करूँ तब शुद्ध होऊ।" इन अतिचारो का चितन स्वाध्याय रूप भी है। परिचित रहने से यथावसर शीघ्र ध्यान मे आ सकते हैं। स्वप्न मे पौषध किया हुआ अपने को माने और उसमे दूषण लगे, ता भी अतिचार द्वारा आलोचना की जाती है।

नोट–श्रमणसूत्र आदि के पाठो के लिए उठने वाले प्रश्नों के भी उत्तर इसी प्रकार समझना चाहिए।

१० प्रश्न—सम्यक्त्व के पाठ मे आये हुए देव शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—यहां पर देव शब्द का अर्थ भवनपति आदि चार जाति के देव वाचक नहीं है किन्तु यहां देव शब्द से देवाधि-देव का ग्रहण है। देवाधिदेव का अर्थ है—ईश्वर, परमात्मा, प्रभु। जैन धर्म में दो प्रकार के ईश्वर माने गये हैं। सशरीरी अर्थात् तेरहवें चौदहवे गुणस्थानवर्ती सर्वज्ञ सर्वदर्शी सशरीरी ईश्वर हैं जो कि धर्मोपदेश आदि फरमाते हैं। आठ कर्मों का क्षय करके जो मोक्ष मे पधार गये हैं वे अशरीरी ईश्वर है उन्हें सिद्ध भगवान् कहते हैं।

११ प्रश्न—प्रतिक्रमण प्राकृत भाषा मे ही क्यों हो? यदि प्रचलित लोकभाषा में अनुवाद पढ़ा जाय तो अर्थ का ज्ञान अच्छी तरह हो सकता है?

उत्तर—प्राचीन प्राकृत पाठों में इतनी गंभीरता और उच्च भावना है कि वह आज के अनुवाद में पूर्णतया उतर नहीं सकती है। कभी कभी ऐसा होता है कि मूल भावना का स्पर्श भी नही हो पाता। दूसरी बात यह है कि लोक भाषाओं मे हुए अनुवादों को साधना का अंग बनाने से धार्मिक क्रिया की एकरूपता नष्ट हो जाती है। सांवत्सरिक आदि पर्व विशेष पर यदि सामूहिक रूप से विभिन्न भाषा-भाषी प्रतिक्रमण करने बैठेंगे तो क्या स्थिति होगी? कोई कुछ बोलेगा तो कुई कुछ! इसलिये मूल प्राकृत पाठों को सुरक्षित रखना आवश्यक है।

❋ सार्थ प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ❋